॥ श्रीहरिः ॥ 409

वास्तविक सुख

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरि: ॥

वास्तविक सुख

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

स्वामी रामसुखदास

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

प्रस्तुत पुस्तकमें श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा नागपुरमें दिये गये कुछ उपयोगी प्रवचनोंका संग्रह किया गया है। ये प्रवचन कल्याणके इच्छुक साधकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। पाठकोंसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि वे कम-से-कम एक बार इस पुस्तकको मननपूर्वक अवश्य ही पढ़ें और इससे लाभ उठानेकी चेष्टा करें।

विनीत—

प्रकाशक

॥ श्रीहरि: ॥

विषय-सूची

॥ श्रीगणेशाय नमः॥

१. वास्तविक सुख

मनुष्य जबतक उत्पत्ति-विनाशशील सुखमें फँसा रहता है, तबतक उसको होश नहीं होता, ज्ञान नहीं होता। उसको यह विचार ही नहीं होता कि इससे कितने दिन काम चलायेंगे! जो उत्पन्न होता है, वह नष्ट होता ही है। जिसका संयोग होता है, उसका वियोग होता ही है। जो आता है, वह चला जाता है। जो पैदा होता है, वह मर जाता है। अब इनके साथ हम कितने दिन रहेंगे? अतः मनुष्यके लिये यह बहुत आवश्यक है कि वह ऐसे आनन्दको प्राप्त कर ले, जिसे प्राप्त करनेपर वह सदाके लिये सुखी हो जाय, उसको कभी किंचिन्मात्र भी कष्ट न हो।

हम देखते हैं कि बचपनसे लेकर अभीतक मैं वही हूँ। शरीर बदल गया, दृश्य बदल गया, परिस्थिति बदल गयी, देश, काल, आदि सब कुछ बदल गया, पर मैं वही हूँ। बदलनेवालोंके साथ मैं कितने दिन रह सकता हूँ? इनसे मुझे कबतक सुख मिलेगा? इस बातपर विचार करनेकी योग्यता तथा अधिकार केवल मनुष्यको ही मिला है, और मनुष्य ही इसको समझ सकता है। पशु-पक्षियोंमें इसको समझनेकी ताकत ही नहीं है। देवता आदि समझ तो सकते हैं, पर उनको भी वह अधिकार नहीं मिला है, जो कि मनुष्यको मिला हुआ है। मनुष्य खूब आगे बढ़ सकता है; क्योंकि मानव-शरीर मिला ही भगवत्प्राप्तिके लिये है। महान् आनन्द मिल जाय, सदा रहनेवाला सुख मिल जाय, उसमें कभी कमी आये ही नहीं—ऐसे सुखकी प्राप्तिके लिये यह मनुष्य-शरीर मिला है। सांसारिक तुच्छ सुख पानेके लिये मनुष्य-शरीर है ही नहीं। ऐसा सुख तो पशु-पक्षियोंको भी मिलता है। हवा चलती है, वर्षा बरसती है, धूप तपती है—ऐसी अनुकूलता-प्रतिकूलता तो पशु, पक्षी,

वृक्ष आदिके सामने भी आती है। उनको भी सुख-दुःख होता है। खेती कुम्हला रही हो और एकदम वर्षा हो जाय तो दूसरे दिन देखो, पत्तियाँ बड़ी सुन्दर, हरी-भरी हो जायँगी; अतः उनको भी प्रसन्नता होती है। वर्षा न होनेसे खेती कुम्हला जाती है; अतः उनको भी दुःख होता है। इस प्रकार थोड़ा सुख और थोड़ा दुःख तो सभी प्राणियोंको होता रहता है। अगर हम भी उन्हींकी तरह सुखी-दुःखी होते रहेंगे, तो महान् सुखको कौन प्राप्त करेगा।

महान् सुख है, इसमें सन्देह नहीं। जैसे, संसारमें एक-एकसे बड़ी वस्तु होती है, एक विद्वान् भी होता है तो उससे बड़ा विद्वान् भी होता है; एक लम्बी उम्रवाला होता है तो उससे लम्बी उम्रवाला भी होता है; एक बलवान् होता है तो उससे बड़ा बलवान् भी होता है। इस बड़प्पनकी कहीं-न-कहीं हद होगी। कोई सबसे बड़ा विद्वान् होगा, सबसे लम्बी उम्रवाला (अविनाशी) होगा, सबसे बड़ा बलवान् होगा; उसको ही ईश्वर कहते हैं। परमात्मा कहते हैं—

'**पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।**' (पातंजलयोगदर्शन १। २६)

अर्थात् पहले जितने हो गये हैं, उन सबका वह ईश्वर गुरु है; क्योंकि कालसे भी उसका नाश नहीं होता। काल सबका भक्षण कर जाता है अर्थात् समय पाकर सब चीजें नष्ट हो जाती हैं। परंतु वह परमात्मा ऐसा है कि सदा ज्यों-का-त्यों रहता है। उसीका अंश यह मनुष्य है। परंतु यह अपने अंशी परमात्मासे विमुख होकर नाशवान्‌की ओर लग गया, इसलिये यह बार-बार दुःख पाता रहता है। इसको सुखका तो एक लोभ रहता है कि किसी तरह सुख मिल जाय, पर मिलता है प्रायः दुःख। पूरा सुख, पूरी अनुकूलता नहीं मिलती। कभी सुख, कभी दुःख, कभी अनुकूलता, कभी प्रतिकूलता; कभी मान, कभी अपमान; कभी निन्दा, कभी स्तुति— ये दोनों अवस्थाएँ आती-जाती रहती हैं और इन्हींमें मनुष्य फँसा

रहता है। इन द्वंद्वोंसे ऊँचा उठकर वास्तविक तत्त्वको प्राप्त करना है। इसीके लिये मानव-शरीर मिला है, और इस मानव-शरीरसे ही उस तत्त्वको प्राप्त कर सकते हैं, इसमें संदेह नहीं। जैसे भूख लगती है तो खानेके लिये अन्न होता है, प्यास लगती है तो पीनेके लिये जल होता है, ऐसे ही अनन्त सुखको प्राप्त करनेकी इच्छा होती है तो ऐसा अनन्त सुख है। अगर अनन्त सुख न होता तो हमें जितना सुख मिला है, उसीसे हम तृप्त हो जाते; परंतु हम उससे तृप्त नहीं होते। जितना धन मिला है, जितना मान लिया है, जितना आदर मिला है, जितनी उम्र मिली है, उससे हम तृप्त नहीं होते, प्रत्युत 'और मिले, और मिले'—ऐसी इच्छा रहती है। अतः एक ऐसी स्थिति होती है, जिसके मिलनेके बाद फिर और मिलनेकी इच्छा नहीं रहती।

गीतामें कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(६।२२)

अर्थात् जिस लाभकी प्राप्ति होनेके बाद फिर कोई और लाभ मिल जाय, यह इच्छा रहती ही नहीं; सदाके लिये तृप्ति हो जाती है। कभी किसी बातकी किंचिन्मात्र भी आवश्यकता नहीं रहती। जिसमें न अन्नकी, न जलकी, न मानकी, न बड़ाईकी, न आरामकी, न भोगकी ही इच्छा रहती है, ऐसी तृप्ति ऐसा एक आनन्द हमारेको मिल सकता है। उसकी प्राप्तिके लिये ही मानव-शरीर मिला है। जबतक उसकी प्राप्तिका उद्देश्य नहीं बनता, तबतक मनुष्यको ठीक तरहसे होश नहीं आता। वह उद्देश्य बनेगा, तभी ये पारमार्थिक बातें समझमें आयेंगी। अतः पूरा लाभ तभी होगा, जब उस लाभके लिये हम लग जायँ। इसके लिये सबसे पहले यह विश्वास होना चाहिये कि ऐसा कोई लाभ है, जो प्रत्येक मनुष्यको मिल सकता है। उसकी प्राप्ति इस मनुष्य-जीवनमें

हो सकती है, यह एकदम सच्ची बात है। कारण कि जितने बड़े-बड़े ऋषि हुए हैं, महात्मा हुए हैं, तपस्वी हुए हैं, त्यागी हुए हैं, जीवन्मुक्त हुए हैं, भगवान्‌के प्रेमी भक्त हुए हैं, उन सबको उस लाभकी प्राप्ति हुई है। जब मनुष्यमात्र उस तत्त्वको प्राप्त कर सकता है, तो फिर हम क्यों नहीं कर सकते? अगर आप उसकी प्राप्तिका लक्ष्य बना लें, तो फिर आपको दूसरी बातें बतायें। तब उन बातोंको आप जरूर समझ लोगे और आगे बढ़ जाओगे, इसमें संदेह नहीं है।

आप ऐसा विचार न करें कि हम तो गृहस्थ हैं, हम तो कुटुम्बमें फँसे हुए हैं, हम उस तत्त्वको कैसे प्राप्त करेंगे आदि। मेरी धारणामें आप ऐसे अयोग्य नहीं हैं, अपात्र नहीं हैं, अनधिकारी नहीं हैं कि उस तत्त्वको प्राप्त नहीं कर सकते। मनुष्यमात्र उस तत्त्वको प्राप्त कर सकता है। मेरेको ऐसी-ऐसी अलौकिक युक्तियाँ सन्तोंसे मिली हैं, जिनसे मनुष्यमात्र अपना उद्धार कर सकता है, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है। केवल आपको उधर दृष्टि डालनी है कि ऐसा एक तत्त्व है।

आप थोड़े-से सुखमें, थोड़े-से लाभमें अटक जाते हो—यही गलती है। कारण कि उससे पूर्णता तो होती नहीं, दुःख पाते रहते हैं और उससे सर्वथा ऊपर उठनेका विचार ही नहीं रहता। थोड़े-से लोभमें फँसकर महान् लाभसे वंचित रह जाते हैं, यही गलती है। इस गलतीको सुधार ले। उस महान् लाभकी भूख लगे तो इतनी तेजीसे लगे कि उसकी पूर्तिके बिना चैन न पड़े, तब उसकी प्राप्ति हो सकती है। परंतु जबतक उसका उद्देश्य नहीं होगा, तबतक बतानेपर भी विशेषतासे पकड़ नहीं सकोगे। निःसंदिग्धरूपसे आपको जँचेगी भी नहीं; क्योंकि वास्तवमें उस तरफ दृष्टि ही नहीं, तो फिर जँचेगी कैसे?

यह बात तो आप सब-के-सब जानते ही हैं कि जो परिस्थिति मिली है उससे संतोष नहीं होता और उससे पूर्णता भी नहीं होती। जितना धन मिला है, उस धनसे पूर्णता नहीं होती, प्रत्युत और धन

मिले—यह इच्छा रहती है। जितना मान, आदर, सत्कार, बड़ाई मिली है, जितनी नीरोगता मिली है, उससे पूरा संतोष नहीं; 'और मिले'—यह इच्छा रहती है। इस तरह कमीका अनुभव सब करते हैं। जब कमी है, तो ऐसी भी कोई चीज अवश्य है, जिससे उसकी पूर्ति होती है, बिलकुल कमी रहे ही नहीं—ऐसी सबकी स्थिति हो सकती है, होती है, और अनेकोंकी हुई है, तो फिर हमारी क्यों नहीं होगी? हम भी उस तत्त्वको प्राप्त कर सकते हैं, बिलकुल सच्ची बात है। केवल हमारा विचार हो जाय कि हम उस तत्त्वको कैसे प्राप्त करें? केवल तीव्र अभिलाषा हो जाय कि हमें वह तत्त्व कैसे मिले?

प्राय: लोगोंने मान रखा है कि उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये बड़ा उद्योग करना पड़ता है; जंगलमें जाकर रहना पड़ता है, तपस्या करनी पड़ती है, बड़े कष्ट सहने पड़ते हैं, तब कहीं वह तत्त्व मिलता है। ऐसी एक धारणा बनी हुई है। मेरी भी ऐसी धारणा रही है। परंतु वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। जितने भी संसारके काम हैं, उन सबसे यह काम सुगम है। जो सब कुछ छोड़कर साधु बन जाये, वह उस तत्त्वको प्राप्त कर ले—ऐसी बात भी नहीं है। गृहस्थ उस तत्त्वको प्राप्त नहीं कर सकता—यह बात भी नहीं है। पढ़ा-लिखा प्राप्त कर सकता है, अनपढ़ नहीं कर सकता—यह बात भी नहीं है। बहुत बलवान् होगा, तितिक्षु होगा, सहिष्णु होगा, वही प्राप्त कर सकता है, दूसरा नहीं कर सकता—ऐसी बात भी नहीं है। कहनेका भाव यह है कि हम सब-के-सब उस तत्त्वको प्राप्त करनेके पूरे अधिकारी हैं। केवल एक ही लक्ष्य हो जाय कि हमें तो उस तत्त्वकी प्राप्ति करनी है। उसकी प्राप्तिके लिये ही सब सामग्री मिली हुई है। आवश्यकता होगी तो और सामग्री मिल जायगी—परमात्माके यहाँ यह एक विलक्षण कायदा है। जैसे, आदमी बोलते-बोलते थक जाता है तो वह चुप हो जाता है और चुप होनेपर उसमें पुन: बोलनेकी शक्ति आ जाती है। चलते-चलते थक जाता है तो थोड़ी

देर विश्राम करनेसे उसमें पुनः चलनेकी शक्ति आ जाती है। दिनभर काम करते-करते थककर रातमें सो जाता है तो सुबह पुनः ताजगी आ जाती है। तात्पर्य है कि मनुष्य जिस किसी कामको करता है, उसमें थकावट होनेपर बिना परिश्रमके, मुफ्तमें सामर्थ्य मिलती है। यह हम सबका अनुभव है। आप बताओ कि दिनभर काम करनेसे थक जाते हो तो रातमें कौन-सा परिश्रम करते हो कि जिससे सुबह शक्ति मिलती है? चुपचाप पड़े रहनेसे ही शक्ति मिल जाती है। जितनी गाढ़ नींद आयेगी, उतनी शक्ति मिलेगी। वह शक्ति परमात्माकी है। परंतु थोड़ी शक्तिमें संतोष न करें, उसमें फँसे नहीं तो महान् शक्ति मिल सकती है। वह महान् शक्ति, वह परमात्मतत्त्व आपको, हमको, सबको मिल सकता है। वह तत्त्व पहले जमानेमें जैसे मिलता था, उससे तो अभी बहुत सस्ता है। सत्य, त्रेता, द्वापर युगमें उम्र भी ज्यादा होती थी, बुद्धि भी तेज होती थी, सामर्थ्य भी अधिक होती थी, उनके लिये वह चीज कठिन थी। जैसे, बड़े आदमीको सब तरहकी अनुकूलता मिलनी कठिन होती है; परंतु बालकको सुगमतासे अनुकूलता मिल जाती है। माँ-बापको समयपर अन्न न मिले तो भी वे बालकके लिये प्रबन्ध कर ही देते हैं; क्योंकि वह असमर्थ है। इसी तरहसे हम जितने असमर्थ होते हैं, उतनी ही हमें परमात्माकी तरफसे सामर्थ्य मिलती है। इतना ही नहीं, हमारी सामर्थ्यसे भी बढ़कर हमें सुविधा मिलती है। जैसे, बालक जितना छोटा होता है, उतनी ही उसको ज्यादा सुविधा मिलती है।

हमारी चाहना, भीतरकी उत्कण्ठा, लालसा, अभिलाषा जोरदार जाग्रत् हो जाय। परंतु वह तब जाग्रत् होगी, जब हमें जो कुछ मिला है, उसमें हम संतोष न करें। कारण कि नाशवान् वस्तुसे हमारी कभी तृप्ति होगी नहीं। अगर नाशवान्‌से ऊँचे उठकर अविनाशी-तत्त्वको प्राप्त करनेकी तीव्र अभिलाषा जागृत हो जाय, तो वह प्राप्त हो जायगा।

☯☯☯

२. मनुष्य-जीवनका उद्देश्य

एक बात खास ध्यान देनेकी है कि यह मानव-शरीर केवल अपना कल्याण करनेके लिये ही मिला है। धन कमाना और भोग भोगना—यह मनुष्य-शरीरका प्रयोजन है ही नहीं। भोग-भोगना तो हरेक योनिमें होता है। देवताओंसे लेकर नरकोंमें पड़े हुए जन्तुओंतकके लिये भोग मिलते हैं। इन्द्रियोंसे होनेवाला सुख स्वर्गमें भी मिलता है और नरकोंमें भी। नरकोंमें, जहाँ बड़ी घोर यातनाएँ दी जाती हैं, उबलते हुए तेलमें डाल दिया जाता है, शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते हैं, तो भी नरकोंमें रहनेवाला जीव मरता नहीं। जब उसे उबलते हुए तेलसे निकाला जाता है, उस समय उसे सुखका अनुभव होता है। शरीरके टुकड़े-टुकड़े करनेपर दुःख होता है; परंतु शरीर मिलनेपर एक सुख होता है। इस प्रकार इन्द्रियोंसे होनेवाला सुख तो नरकोंमें भी मिलता है, कुत्ते, गधे, सूअर आदिको भी सुख मिलता है। परंतु मनुष्य-शरीर सुख भोगनेके लिये, ऐश-आराम करनेके लिये है ही नहीं। दुःख भोगनेके लिये भी यह मनुष्य-शरीर नहीं है। सुखकी मुख्यता स्वर्गमें रहती है और दुःखकी मुख्यता नरकोंमें रहती है। मनुष्य-शरीरमें सुख और दुःख दोनों ही आते हैं। परंतु मनुष्य-शरीर सुख और दुःख—दोनोंसे ऊँचा उठकर अपना कल्याण करनेके लिये मिला है।

एक मार्मिक बात है। मनुष्यको जितनी सुख-सामग्री मिलती है, वह केवल दूसरोंका हित करनेके लिये मिलती है, और जितनी दुःख-सामग्री मिलती है, वह केवल सुख-बुद्धि हटानेके लिये मिलती है। ये दो बातें खूब सोचनेकी हैं। संसारका सुख क्या है? जिस वस्तुकी चाहना होती है, वह वस्तु मिल जाय तो उससे सुख होता है। जैसे, धनकी लालसा हो तो धन मिलनेसे सुख होगा।

जोरदार भूख लगे तो भोजन मिलनेसे सुख होगा। जोरदार प्यास लगे तो जल मिलनेसे सुख होगा। इस प्रकार कामनाकी पूर्ति होनेसे एक सुख होता है। वह सुख कामनाके आधीन है। अगर जोरदार भूख न हो और भोजन बढ़िया मिल जाय तो सुख नहीं होगा। मनमें लोभ नहीं होगा तो धनके मिलनेसे सुख नहीं होगा। तात्पर्य है कि जिस चीजके न मिलनेका दु:ख होगा, उस चीजके मिलनेसे ही सुख होगा, संसारके जितने संयोग हैं, उनमें पहले दु:ख होगा, तभी उनसे सुख मिलेगा। अगर दु:ख नहीं होगा, तो संसारके पदार्थ सुख नहीं देंगे। अत: उस सुखका कारण दु:ख हुआ, और उस सुखके बादमें भी दु:ख जरूर होगा। जैसे, धन मिलनेसे सुख होता है और धन चला जाता है तो दु:ख होता है। अनुकूल सामग्री मिले तो सुख होता है और वह नष्ट हो जाय तो दु:ख होता है। सुख आता है तो अच्छा लगता है और जाता है तो बुरा लगता है। ऐसे ही दु:ख आता है तो बुरा लगता है और जाता है तो अच्छा लगता है। अच्छा लगना और बुरा लगना दोनोंमें है। एक तरफ सुख और एक तरफ दु:ख होता है, पर दोनोंको तौलकर देखा जाय तो कोई फर्क नहीं है!

साधारण मनुष्यकी बुद्धि आरम्भको तो देखती है, पर उसके अंतको नहीं देखती। परंतु विचारवान् मनुष्य उसके अंतको देखते हैं कि इसका नतीजा क्या होगा? नतीजा देखनेवाले तो विवेकी पुरुष होते हैं, पर जो नतीजा न देखकर आरम्भ देखते हैं, वे पशु होते हैं। जो रोगी आदमी जीभके थोड़े-से सुखके वशमें होकर कुपथ्य कर लेता है, तीन अंगुल जीभके वशमें होकर साढ़े तीन हाथ शरीरको बिगाड़ लेता है, वह विचारवान् पुरुष नहीं कहलाता। विचारवान् बुद्धिमान् वही कहलाता है, जो कुपथ्य न करे। विचारवान् मनुष्य ऐसा काम नहीं करेंगे, जिससे नरकोंमें जाना पड़े, चौरासी

लाख योनियोंमें भटकना पड़े, बार-बार दुःख पाना पड़े। ऐसे कामके वे नजदीक ही नहीं जायँगे। वे वही काम करेंगे, जिससे वे सदाके लिये सुखी हो जायँ।

मनुष्यमें विवेककी प्रधानता है। उस विवेकको महत्त्व देकर ही अपना उद्धार करना है। विवेककी प्रधानता नतीजेपर सोचनेमें है, तात्कालिक सोचनेमें नहीं। तात्कालिक दृष्टि तो पशुओंकी होती है कि जो सामने दीखता है, वही ठीक है, बस आगे क्या होगा, इसकी परवाह नहीं। अभी जो मिल जाय, ले लो, फिर नतीजा क्या होगा, कोई परवाह नहीं—ऐसे मनुष्योंमें और पशुओंमें क्या फर्क है? मनुष्य तो वह है, जो यह देखे कि अंतमें इसका परिणाम क्या होगा? अभी भोग-भोगनेमें और धनका संग्रह करनेमें लगे रहेंगे तो मरनेपर धन आदि पदार्थ यहीं रह जायँगे और अपने किये हुए कर्मोंका फल आगे भोगना पड़ेगा। इसलिये यहाँ धन भी कमाना है, शरीरका निर्वाह भी करना है; परंतु लोभमें और भोगमें नहीं फँसना है—यह सावधानी रखनी है। गृहस्थमें रहते हुए धन कमायें, सुविधाके अनुसार रहें, पर लोभ-बुद्धिसे और भोग-बुद्धिसे नहीं। तात्पर्य है कि लोभ-बुद्धिसे धन नहीं कमाना है, और भोग-बुद्धिसे संसारमें सुख नहीं भोगना है। गीतामें आया है कि राग-द्वेषरहित इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंका सेवन किया जाय तो एक प्रसन्नता होती है। उस प्रसन्नतासे दुःखोंका नाश होता है। ऐसे प्रसन्नचित्तवाले साधककी बुद्धि बहुत जल्दी परमात्मतत्त्वमें स्थित हो जाती है, (२।६४-६५)। इसलिये धन कमाना है और उसके द्वारा दूसरोंका उपकार करना है; परंतु संग्रह नहीं करना है। लोभ-बुद्धि होनेसे ही संग्रहकी बुद्धि होती है। लोभी आदमी धनको अपने लिये और दूसरोंके लिये खर्च नहीं कर सकता। खर्च करनेसे ही पैसे काम आते हैं। खर्च और पैसा—ये दो चीजें हैं। इन दोनोंमें खर्च करना बड़ी बात है, संग्रह करना बड़ी बात

नहीं है। कारण कि संग्रह करनेसे दूसरोंके सुखमें भी बाधा पहुँचेगी और खुद भी सुख नहीं भोग सकोगे। लोभी आदमी धनके संग्रहका अभिमान करके अपनेको सुखी बेशक मान ले, पर उसका धन न खुदके काम आता है और न दूसरोंके काम आता है। जो अपने तथा दूसरोंके काम नहीं आता, उसे धन मानना ही गलती है। जैसे, आपने रुपयोंका एक बक्सा भर लिया और हमने रद्दी अखबारोंका एक बक्सा भर लिया। अगर काममें न लें तो रुपये और रद्दीमें क्या फर्क हुआ? ऐसे ही एक बक्सेमें सोना रखा जाय और एक बक्सेमें पत्थर रखें जायँ। काममें लेनेपर तो सोना अपनी जगह है और पत्थर अपनी जगह है। परंतु अगर काममें न लें तो सोने और पत्थरमें क्या फर्क हुआ? इससे सिद्ध हुआ कि ये चीजें खर्च करनेसे ही काम आती हैं, संग्रह करनेसे नहीं; नहीं तो छोड़कर मरना पड़ेगा ही। अब ज्यादा धन छोड़कर मर गये तो क्या, और थोड़ा धन छोड़कर मर गये तो क्या? अपने साथ उसका सम्बन्ध तो रहेगा नहीं। इसलिये आपके पास जो वस्तुएँ हैं उनको यथायोग्य खर्च करो। खर्च करनेसे वे अपने काम भी आयेंगी और दूसरोंके काम भी आयेंगी। रुपये आदि वस्तुओंको यों ही नष्ट करना भी मनुष्यता नहीं है और उनका केवल संग्रह करना भी मनुष्यता नहीं है। यथायोग्य जहाँ चाहिये, वहाँ खर्च करना है और न्यायपूर्वक धनका उपार्जन करना है। यह मनुष्यता है। लोभमें नहीं फँसना है। निर्वाहके लिये भोजन आदि करना है, जिससे शरीर ठीक रहे। भगवान्‌का भजन भी करें, संसारकी सेवा भी करें और घरका काम-धंधा भी करें, इसलिये शरीरको ठीक रखना है। अगर भोगोंमें ही लग जायँगे तो भोग-भोगते शरीर खराब हो जायगा, किसी कामके लायक नहीं रहेगा। पारमार्थिक उन्नति तो कर ही नहीं सकेंगे, लौकिक काम-धन्धा भी नहीं होगा। कारण कि रोगी शरीरसे कुछ भी सेवा नहीं

हो सकेगी। पदार्थोंका संग्रह करना और भोग-भोगना—ये असुरोंके लक्षण हैं, मनुष्योंके लक्षण नहीं हैं। यह आसुरी सम्पत्ति है, जो बाँधनेवाली है।

'निबन्धायासुरी मता।' (गीता १६। ५)

मनुष्यको यह होश रखना चाहिये कि केवल संग्रह करनेके लिये नहीं कमाना है। केवल भोग-भोगनेके लिये, ऐश-आराम करनेके लिये नहीं कमाना है; किन्तु अपना निर्वाहमात्र करके पारमार्थिक और लौकिक व्यवहारमें उसका सदुपयोग करना है। पारमार्थिक उन्नति करनी है। दूरदृष्टि रखनी है कि मरनेके बाद हमारा कल्याण हो जाय, मुक्ति हो जाय। अगर पाप करते रहोगे तो आगे नरकोंमें जाना पड़ेगा, चौरासी लाख योनियोंमें जाना पड़ेगा, इसपर बहुत विचार करनेकी आवश्यकता है। मनुष्यका खास उद्देश्य परमात्मतत्त्वको प्राप्त करना है, अपना कल्याण करना है। कल्याण क्या है? लाभ तो पूरा मिल जाय और नुकसान किसी तरहका न हो। सुख भी ऊँचा-से-ऊँचा मिल जाय और दुःखकी वहाँ पहुँच न हो। केवल आनन्द ही आनन्द रहे। इसीको कल्याण कहते हैं, मुक्ति कहते हैं। इसको प्राप्त करनेके लिये ही मानव-शरीर मिला है, तुच्छ भोगोंमें फँसकर महान् दुःख पानेके लिये नहीं।

३. मनुष्य-जीवनकी सफलता

शरीर-निर्वाहके लिये वस्तुओंकी आवश्यकता होती है, रुपयोंकी नहीं। कारण कि वस्तुएँ स्वयं काम आती हैं, पर रुपये स्वयं काम नहीं आते। रुपये वस्तुओंके द्वारा काम आते हैं। अत: रुपयोंसे वस्तुएँ विशेष आवश्यक हैं। वस्तुओंसे भी आवश्यक शरीर है। शरीरके लिये ही वस्तुएँ होती हैं। शरीरका जो महत्त्व है, वह वस्तुओंका नहीं है। पशु आदिके शरीर भी बहुत कामके हैं; क्योंकि उनसे मनुष्यके निर्वाहकी कई वस्तुएँ पैदा होती हैं; जैसे—गायसे दूध, भेड़से ऊन आदि। परंतु उनसे भी बढ़कर है मनुष्यका शरीर, जिससे यह लोक और परलोक दोनों सुधर सकते हैं।

शास्त्रोंमें मनुष्य-शरीरकी बड़ी महिमा आती है। इस शरीरमें बढ़िया चीज क्या है? इसमें बढ़िया चीज है—विवेक। जिससे सार-असार, नित्य-अनित्य, कर्तव्य-अकर्तव्य—इन बातोंका ठीक तरहसे बोध होता है, उसे 'विवेक' कहते हैं। यह विवेक सर्वोपरि है। इस विवेककी ही महिमा है। यह विवेक जितना अधिक होगा, उतना ही मनुष्य श्रेष्ठ होगा। व्यवहारमें भी किसी मनुष्यका अधिक आदर होता है तो उसमें विवेक ही कारण है। मनुष्यमें विवेक-शक्ति जितनी अधिक जाग्रत् होगी, उतना ही अधिक वह आदरणीय हो जायगा। कारण कि विवेक-शक्तिसे वह हरेक बातका ठीक-ठीक निर्णय करेगा। इस विवेक-शक्तिकी महिमा मनुष्यसे भी बढ़कर है। कारण कि विवेक-शक्ति होनेसे ही मनुष्य-शरीरकी इतनी महिमा है। मनुष्यके इस ढाँचे (शरीर)-की आकृतिकी महिमा नहीं है।

विवेकसे भी बढ़कर क्या है? विवेकसे भी बढ़कर है—परमात्मा। विवेकके द्वारा सार-असार, नित्य-अनित्यको समझकर नित्य, निर्विकार

और सर्वोपरि परमात्मतत्त्वको प्राप्त कर लेनेमें ही मनुष्य-शरीरकी सफलता है। उसे प्राप्त न करके सांसारिक भोगोंमें ही समय लगा दिया तो मनुष्य-शरीर सफल नहीं हुआ। भोगका सुख तो पशु-पक्षियोंको भी मिलता है, वे भी आरामसे रहते हैं। मैंने ऐसे कुत्तोंको देखा है, जिनकी देखभालके लिये आदमी रहते हैं। उनके रहनेके कमरोंमें गर्मीके दिनोंमें खसखसके टाटे लगे रहते हैं, बैठनेके लिये बहुत अच्छा बिछौना होता है, ऊपर पंखे लगे रहते हैं, टहलनेके लिये जाते हैं तो आदमी साथ रहते हैं, मोटर, हवाई जहाजमें वे यात्रा करते हैं, आदि। मनुष्योंमें भी बहुत कम आदमियोंको ऐसा आराम मिलता है। अतः सांसारिक सुखभोग और आराम मिलना होगा तो कुत्ते, गधे आदिकी योनिमें भी मिल जायगा। परंतु परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति इस मनुष्यमें ही हो सकती है। मनुष्यको छोड़कर दूसरे जितने भी पशु-पक्षी हैं, वे परमात्मतत्त्वको समझ भी नहीं सकते।

पशुओंमें सबसे उत्तम गाय मानी गयी है। गोबर और गोमूत्रसे पवित्रता आती है, रोगोंका नाश होता है। गाय पृथ्वीको पुष्ट करती है और पृथ्वी गायको पुष्ट करती है—इन दोनोंकी पुष्टिसे सब मनुष्योंका पालन होता है, उनके शरीरोंका निर्वाह होता है। इतनी श्रेष्ठ गायको भी आप परमात्मतत्त्वके विषयमें नहीं समझा सकते कि परमात्मा ऐसे हैं। गाय बहुत उपयोगी है, श्रेष्ठ भी है, हम उससे लाभ भी बहुत लेते हैं, इसलिये गायकी रक्षा करना हमारा मुख्य कर्तव्य होता है। परंतु गाय परमात्मतत्त्वको प्राप्त कर ले, ऐसी योग्यता उसमें नहीं है। यह योग्यता केवल मनुष्य-शरीरमें ही है। मनुष्यकी जितनी महिमा है, उतनी देवताओंकी भी नहीं है। देवताओंके शरीर दिव्य होते हैं, हमारे शरीरकी तरह हाड़-माँसके नहीं होते। हमारा शरीर पृथ्वी-तत्त्व प्रधान होता है, देवताओंके शरीर तैजस् तत्त्व प्रधान होते हैं। जैसे, यह प्रकाश

है, इस प्रकाशमें सब दीखते हैं न? यह तैजस् तत्त्व है। इसकी प्रधानता होती है देवताओंमें। जैसे कोई मलसे भरा हुआ सूअर हो और वह हमारे पाससे निकले तो हमारेको दुर्गंध आती है, ऐसे ही देवताओंको हमारे शरीरसे दुर्गंध आती है। ऐसा मलिन हमारा शरीर है। परंतु सज्जनो! उन देवताओंको भी परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका अधिकार नहीं है। देवता सुख भोगनेके लिये ही हैं। उनका शरीर अच्छा है, उनका लोक अच्छा है, उनका भोजन अमृतका है; परंतु कल्याण करनेके लिये मानव-शरीरकी ही महिमा है, देवताओंके शरीरोंकी नहीं। इसीलिये मनुष्य-शरीरको सबसे दुर्लभ बताया गया है— ***'नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥'*** (मानस ७। १२१। ५)। परंतु मनुष्य-शरीरमें आकर भी जो अपना उद्धार नहीं करता, केवल खाने-कमानेमें ही लगा रहता है, उसकी निंदा की गयी है।

रुपये-पैसोंका संग्रह हो जाय और उनसे हम सुख भोगें—इन दोनोंमें जो अत्यन्त आसक्त हो जाते हैं, वे मनुष्य परमात्मतत्त्व क्या है? मुक्ति क्या है? जन्म-मरण मिटनेसे क्या लाभ है? महान् आनन्द क्या है?—इसको जान ही नहीं सकते। दुःख सदाके लिये मिट जाय और सदाके लिये महान् आनन्द हो जाय—तत्त्वको समझनेकी ताकत उनमें नहीं रहती।

हमें उस तत्त्वको प्राप्त करना है, जो इस मनुष्य-शरीरसे ही प्राप्त किया जा सकता है। उसकी प्राप्ति कैसे हो? इसके लिये एक बात मुख्य है कि हमारा ध्येय, हमारा लक्ष्य केवल परमात्मतत्त्व हो। जैसे मनुष्यका लक्ष्य धन कमानेका होता है तो वह कहीं-का-कहीं चला जाता है, ऐसे ही हमारा लक्ष्य परमात्मप्राप्तिका हो जाय। चाहे हम दुःख पायें, चाहे सुख पायें; चाहे निर्धन हो जायँ, चाहे धनवान् हो जायँ; चाहे रोगी हो जायँ, चाहे नीरोग हो जायँ; चाहे जीते रहें, चाहे मर जायँ;

चाहे लोग आदर करें, चाहे निरादर करें—हमें तो उस परमात्मतत्त्वको प्राप्त करना है। ऐसा मुख्य लक्ष्य हो जाता है तो परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम हो जाती है। जबतक ऐसा लक्ष्य नहीं होता तभीतक परमात्मप्राप्ति कठिन मालूम देती है। वास्तवमें परमात्मतत्त्व-प्राप्ति कठिन नहीं है। कारण कि वह सब जगह है, सब देशमें है, सब कालमें है, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें है, सम्पूर्ण घटनाओंमें है, सम्पूर्ण क्रियाओंमें है। संसारका कोई भी, किंचिन्मात्र भी ऐसा परमाणु नहीं है, जहाँ परमात्मा न हो। उसकी प्राप्तिमें कठिनाई यही है कि उसे प्राप्त करनेकी जोरदार इच्छा नहीं है, सांसारिक भोगोंमें और संग्रहमें फँसे हुए हैं, अतः इनसे उपराम होकर परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेका उद्देश्य बनाना चाहिये।

रुपयोंसे वस्तु, वस्तुसे शरीर, शरीरसे विवेक और विवेकसे भी सत्य-तत्त्व परमात्मा श्रेष्ठ है। इसलिये परमात्माको सबसे अधिक आदर देकर उसको प्राप्त कर लेना ही मनुष्यका खास कर्तव्य है और इसीमें मनुष्य-जीवनकी सफलता है।

☯☯☯

४. धन-संग्रहसे हानि

यह प्रत्यक्ष बात है कि हमारे शरीर जब जन्मे थे, तब छोटे-छोटे थे, आज इतने बड़े हो गये! किसी एक वर्षमें ये शरीर इतने बड़े हुए हों, ऐसी बात नहीं है। ये प्रत्येक वर्षमें बदले हैं। जो प्रत्येक वर्षमें बदलते हैं, वे प्रत्येक महीनेमें बदलते हैं। ऐसा नहीं कि ग्यारह महीनोंमें तो नहीं बदले और बारहवें महीनेमें बदल गये हों। जो प्रत्येक महीनेमें बदलते हैं, वे प्रत्येक दिनमें बदलते हैं। ऐसा नहीं कि उन्तीस दिनोंमें तो वैसे ही रहे और तीसवें दिन बदल गये। जो प्रत्येक दिनमें बदलते हैं, वे प्रत्येक घंटेमें बदलते हैं। ध्यान दें, पहले घंटेमें जो शरीर हैं, वे दूसरे घंटेमें वैसे नहीं हैं। नहीं तो एक दिनमें कैसे बदलते? जो घंटेभरमें बदलते हैं, वे उनसठ मिनटमें न बदलकर साठवें मिनटमें बदल जायँ—ऐसा नहीं होता। जो प्रत्येक मिनटमें बदलते हैं, वे प्रत्येक सेकण्डमें बदलते हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ? कि केवल बदलना-ही-बदलना है। बदलकर किधर जा रहे हैं? मृत्युकी ओर जा रहे हैं; बिलकुल निःसन्देह बात है। जितने हम जी गये, उतने हम मर गये! अब आगे कितनी आयु बाकी है, इसका तो पता नहीं है, पर जितने वर्ष बीत गये, उतने वर्ष हमारी आयुसे कम हो गये, मौत उतनी नजदीक आ गयी—इसमें कोई संदेह नहीं है। जीवन मृत्युकी तरफ जा रहा है। यह शरीर अभावकी तरफ जा रहा है। एक दिन इसका सर्वथा अभाव हो जायगा। आज जो 'है', एक दिन वह 'नहीं' हो जायगा। परंतु चाहना यह रखते हैं कि भोग-पदार्थोंका संग्रह कर लें, रुपया इकट्ठा कर लें, कितनी भूलकी बात है यह।

जरा ध्यान दें। रुपया कमाना और उसे अच्छे काममें लगाना दोष नहीं है; पर उसको जमा करनेकी जो एक धुन है, वही दोष

है। इसका अर्थ यह नहीं है कि रुपये इकट्ठे नहीं होने देना है। आवश्यकता पड़नेपर भी खर्च न करें—यह तात्पर्य भी नहीं है। बहन-बेटी है, ब्राह्मण है, कोई रोगी है, भूखा है, नंगा है और अभावग्रस्त है, उसके लिये खर्च नहीं करना गलती है। संग्रह करके आखिर करोगे क्या? आवश्यकता पड़नेपर जब अपने लिये भी खर्च नहीं करते और दूसरोंके लिये भी खर्च नहीं करते तो वह संग्रह किस कामका? यह शरीर तो रहेगा नहीं। जब शरीरका अभाव हो जायगा, तब वे रुपये क्या काम आयेंगे? अगर रुपयोंको न्यायपूर्वक कमाते हैं और उनको आवश्यक काममें खर्च करते हैं, तब तो होश है, नहीं तो रुपयोंके लोभमें बेहोशी आ जाती है। रुपयोंका इतना मोह हो जाता है कि रोकड़में लाख रुपये हो जायँ तो अब मनुष्य उन लाख रुपयोंको छोड़ना नहीं चाहता। कभी भूलसे हजार-दो-हजार खर्च हो जायँ तो बड़ा दुःख लगता है कि मूलमेंसे खर्च कर दिया! अगर लड़का खर्च कर देता है तो उसपर गुस्सा आता है कि 'तुम कोई मनुष्य हो? मूल खाओगे तो कितने दिन काम चलेगा?' रोटी-कपड़ेकी तंगी तो भोग लेंगे, पर मूलको खर्च नहीं करेंगे, जिससे वह तो ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रहे। आपसे पूछा जाय कि मूलका क्या करोगे? शरीर जा रहा है, मौत प्रतिक्षण नजदीक आ रही है, ये रुपये पड़े-पड़े क्या काम करेंगे?

मैं यह नहीं कहता कि आप रुपये छोड़ दो, फेंक दो या नष्ट कर दो। पर उन रुपयोंके रहते खुद तंगी भोगते हो, आवश्यक चीज भी नहीं लेते; जहाँ जरूरी है, वहाँ खर्च भी नहीं करते, तो फिर रुपये क्या काम आये? होश आना चाहिये कि भगवान्‌ने दिये हैं तो उन रुपयोंको अच्छे-से-अच्छे काममें खर्च करें। जीते-जी अपने और दूसरोंके काममें लगायें। केवल कंजूसी करके हम संख्या ही बढ़ाते चले जायँगे तो क्या होगा? अच्छा-से-अच्छा मौका आनेपर

भी ख्याल रहेगा कि कोई दूसरा खर्च कर दे तो अच्छा है; अपना खर्च न हो तो अच्छा है। सज्जनो! आप मेरी बातकी तरफ ध्यान दें। जैसे, कोई दान-पुण्यका काम हुआ, कोई उत्तम-से-उत्तम सत्संग-समारोह आदिका काम हुआ, उस समय भी यह भाव रहे कि कोई दूसरा खर्च कर दे तो अच्छा है, अपनी आफत टले, तो फिर उन रुपयोंका क्या करोगे? जैसे व्यापारी आदमी देखता है कि इतने सस्तेमें अधिक-से-अधिक ले लें; क्योंकि बाजारका भाव तो मँहगा होनेवाला है और अमुक-अमुक जगह तेजी आ ही गयी है, पर यहाँ सस्ता है, तो ब्याजमें भी रुपया लेकर अधिक-से-अधिक ले लें तो अच्छा है। इस प्रकार जैसे लेनेका लोभ लगता है, वैसे खर्च करनेका लोभ नहीं लगता, जो कि हमारे साथ चलेगा। जितना आप खर्च कर दोगे, शुभ काममें लगा दोगे, उतना आपके साथ चलेगा। अतः यह लोभ लगना चाहिये कि अच्छे-से-अच्छे काममें मैं खर्च करूँ। एक-एकको ऐसा कहना चाहिये कि यहाँ तो मैं खर्च करूँगा। बारी नहीं आये; क्योंकि ऐसा मौका मिलना बड़ा मुश्किल होता है।

गीताप्रेसके संस्थापक और संचालक श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने एक बार यह बात कही कि रुपये कमाना हम कठिन नहीं समझते, रुपयोंको अच्छे काममें लगाना कठिन समझते हैं। दूसरे भाई-बंधु आड़ लगा देते हैं, भीतरका लोभ भी आड़ लगा देता है कि इतना खर्च करनेकी क्या जरूरत है? इतनेसे ही काम चल जायगा। यह सोचते ही नहीं कि क्या करेंगे पैसोंका? छोड़कर मरेंगे तो दस-बीस हजार कम छोड़कर मरेंगे, यही तो होगा और क्या होगा? यह तो है नहीं कि सब खर्च हो जायँगे, कंगले हो जायँगे। जो धन यहीं रह जायगा या आ करके चला जायगा, उससे कोई पुण्य नहीं होगा, उससे अंतःकरण निर्मल नहीं होगा। परंतु अच्छे-से-

अच्छे काममें धन खर्च कर देंगे तो चित्त प्रसन्न होगा, पुण्य होगा, संतोष होगा कि इतने पैसे तो अच्छे काममें लग गये! अब जो बाकी रहे, वे अच्छे काममें कैसे लगें? इसका विचार करना है।

एक मार्मिक बात है कि वास्तवमें वस्तुकी महिमा नहीं है। महिमा है, उसके उपयोगकी। कितनी ही वस्तुएँ पासमें हों, यदि उनका उपयोग नहीं किया तो वे किस कामकी? जैसे मैंने पहले आपको बताया ही है कि एक आदमीने बक्सेमें सोना भर रखा है और हमने एक बक्सेमें पत्थर भर रखे हैं। दोनोंका भार बराबर है। खर्च करनेसे तो सोना बढ़िया है, पर खर्च न किया जाय तो सोने और पत्थरके भारमें क्या फर्क है? काममें लेनेसे तो सोना बहुत कीमती है, पत्थर कीमती नहीं है। परंतु काममें लें ही नहीं तो पासमें चाहे सोना हो, चाहे पत्थर हो, क्या फर्क है। हाँ, इतना फर्क जरूर है कि पासमें सोना पड़ा रहनेसे चिंता अधिक हो जायगी कि कोई चुरा न ले, किसीको पता न लग जाय! मनमें चिंता और खलबली होनेके सिवाय और क्या फायदा होगा? इस बातको आप गहरा उतरकर, शांतिसे, निष्पक्ष होकर ठीक तरह समझें।

सज्जनो! समय बड़ी तेजीसे जा रहा है, मौत नजदीक आ रही है, एक दिन सब पदार्थोंके साथ पड़ाकसे सम्बन्ध टूट जायगा। इसलिये बड़ी सावधानीसे समयको और पैसोंको अच्छे-से-अच्छे काममें लगाओ।

❂❂❂

५. मिली हुई सामग्री अपनी नहीं

यह प्रत्यक्ष अनुभवकी बात है कि जिन व्यक्तियों और वस्तुओंके साथ हम रहते हैं, वे हमारे साथ हरदम रहेंगी, ऐसी बात नहीं है और हम उनके साथ हरदम रहेंगे, यह बात भी नहीं है। इतना ही नहीं, शरीरके साथ हम सदा रहेंगे और शरीर हमारे साथ सदा रहेगा—ऐसा भी नहीं है। इस बातपर खूब विचार करना है। जब ये हमारे साथ सदा नहीं रह सकते और हम इनके साथ सदा नहीं रह सकते, तो फिर इनके भरोसे कितने दिन काम चलेगा? यह तो उसकी बात हुई जो हमारे सामने दीखता है। परंतु जो परमात्मा हैं, जिनके बारेमें हमने शास्त्रोंसे, संतोंसे सुना है, वे परमात्मा सदासे हमारे साथ थे, साथ हैं और सदा साथ रहेंगे। केवल सांसारिक वस्तुओंकी ओर दृष्टि रहनेसे उस परमात्माको पहचान नहीं सकते, उनको देख नहीं सकते। अगर हम इन नाशवान् वस्तुओंसे विमुख हो जायँ तो परमात्माके दर्शन हो जायँगे। विमुख होना क्या है? इनसे सुख लेना छोड़ दें, इनको दूसरोंकी सेवामें लगायें। वस्तुओंको तो दूसरोंके हितके लिये खर्च करें और व्यक्तियोंको सुख दें, आराम दें, उनका हित करें। ऐसा भाव बना लें कि हमारे पास जितनी वस्तुएँ हैं उनके द्वारा दूसरोंकी सेवा करनी है। अभी जो यह भाव है कि संग्रह करना है, अपने पास रखना है, इस भावको बिलकुल उलटना पड़ेगा कि इनको दूसरोंकी सेवामें लगाना है। विचार करें, रुपयोंको तो सदा साथमें रख सकोगे नहीं और इन रुपयोंके साथ आप सदा रह सकोगे नहीं। रुपये तो साथ जायँगे नहीं, पर रुपये रखनेका जो भाव है, वह मरनेपर भी साथ रहेगा। रुपये रखनेका भाव महान् पतन करनेवाला और स्वभाव बिगाड़नेवाला है।

रुपये दूसरोंका हित करनेके लिये हैं, सेवा करनेके लिये हैं—

ऐसा भाव रखनेपर सब रुपये चले नहीं जायँगे। जितना-जितना सेवामें खर्च करोगे, उतने ही जायँगे और पासमें रहनेपर भी बाधा नहीं देंगे। जैसे, अधिक मासमें दान देनेके लिये माताएँ चीजें इकट्ठी कर लेती हैं कि ये थाली, लोटा, गिलास, आसन, छाता, कपड़ा आदि दान करनेके लिये हैं, अपने काममें लेनेके लिये नहीं हैं। भूलसे कोई बालक वहाँसे कोई चीज उठाकर ले आये तो कहती हैं ना! ना! इसको वहीं रख दे, यह अपने काममें लेनेकी नहीं है, यह तो देनेकी है। इस प्रकार देनेका भाव हो जानेसे उन चीजोंके साथ ममता नहीं रहती। इसी तरहसे यहाँ हमें जितनी वस्तुएँ मिली हैं, वे सब सेवा करनेके लिये मिली हैं। वे हमारी नहीं हैं, सेवाके लिये हैं—ऐसे केवल भावना बदल दें। इसमें आपका एक कौड़ीका, एक पैसेका भी नुकसान नहीं है। जितनी सेवामें लगनी है, उतनी सेवामें लग जायगी, बाकी बची हुई फिर लगेगी। लगे या न लगे, अपने काममें नहीं लेना है। बस, निर्वाहमात्रके लिये प्रसादरूपसे लेना है— ***तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥*** (मानस २।१२९।१)। सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कर दिया, अब इसमेंसे जो भोजन पायेंगे, कपड़ा लेंगे, वह प्रसादरूपसे लेंगे। जिस मकानमें रहेंगे, वह हमारा नहीं है, ठाकुरजीका प्रसाद है। प्रसादमें स्वाद नहीं देखा जाता, शौकीनी नहीं देखी जाती, ऐश-आराम नहीं देखा जाता। केवल प्रसादका सेवन करना है। प्रसाद लेनेका भी माहात्म्य होगा और दूसरोंको देनेका भी फर्क कुछ पड़ेगा नहीं। जैसे, भगवान्‌को कोई भोग लगाये तो चीजें उतनी-की-उतनी रहेंगी, माशाभर भी कम नहीं होंगी। परंतु वे परम पवित्र हो जायँगी। बड़े-बड़े धनी आदमी भी हाथ पसारेंगे और प्रसादका कणमात्र देनेसे राजी हो जायँगे। कारण क्या है? वह ठाकुरजीका प्रसाद है!

सभी प्राप्त वस्तुओंको आप भगवान्‌की मान लें, जो सच्ची बात है। साथमें लाये नहीं, ले जा सकते नहीं, रख सकते नहीं, उनके साथमें रह सकते नहीं। ये तो ठाकुरजीकी हैं; अतः ईमानदारीके साथ ठाकुरजीके अर्पण कर दो कि महाराज! आपकी वस्तु आपके अर्पण। कितनी बढ़िया बात है। एकदम निर्लिप्तता है। निर्वाहमात्रका प्रसाद लेंगे; नहीं लेंगे तो भगवान्‌की सेवा कैसे होगी? सब कुछ ठाकुरजीका माननेपर कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। आपके पास चीजें ज्यों-की-त्यों रहेंगी, कुटुम्ब वैसा-का-वैसा ही रहेगा, मकान वैसा-का-वैसा ही रहेगा। शरीर वैसा-का-वैसा ही रहेगा। पर आपका चट कल्याण हो जायगा। नहीं तो उन चीजोंको अपना माननेसे बंधन हो जायगा और रहेगा कुछ नहीं आपके पासमें।

'आप बुद्धिमानीसे जरा सोचो। अपना कुछ भी खर्च न हो और कल्याण हो जाय, कितनी बढ़िया बात है! खर्च होनेवाला तो खर्च हो ही जायगा। घाटा लगना है तो लग ही जायगा। दिवालिया होना है तो हो ही जायगा। चाहे कितनी ही कंजूसी करो, क्या बच सकते हो? शरीरके साथ कितना ही मोह रखो, क्या शरीरको रख सकते हो? रख सकते ही नहीं। इसलिये इन चीजोंको भगवान्‌की ही मान लो। अब घाटा लगे तो भगवान्‌का, नफा हो तो भगवान्‌का। हम क्यों रोयें? हम क्यों दुःख पायें? ये चीजें भगवान्‌की हैं। भीतरसे भगवान्‌की ही मान लो तो आपको क्या घाटा लगता है? आपका क्या नुकसान होता है? जैसे कहावत है— ***'हींग लगे न फिटकरी, रंग झकाझक आय।'*** खर्चा कुछ लगे ही नहीं, और हम निहाल हो जायँ। जो होना है, वह होगा ही; जिसको रहना है, वह रहेगा ही; जिसको जाना है वह जायगा ही, इसमें तो कोई फर्क पड़ेगा नहीं। केवल भावसे भगवान्‌के अर्पण कर दो कि यह तो भगवान्‌की चीज है।

आपके घर लड़की जन्मती है तो शुरूसे आप ऐसा समझते हो कि यह लड़की तो दूसरे घर जायगी। घरमें भाई-बहन आपसमें झगड़ते हैं तो लड़केसे कहते हैं, कि 'अरे, बहनसे क्यों झगड़ता है, यह तो अपने घर जानेवाली है।' ऐसे ही आप कृपा करके जितनी सम्पत्ति मिली है, उसको बेटीकी तरह मान लो, तो क्या हर्ज है? अब बहन तो अपने घर जायगी ही, अपने पास तो रहेगी नहीं। बेटी घरपर कबतक रहेगी, बताओ? शरीर, सम्पत्ति, मकान, परिवार आदि सब-का-सब भगवान्‌की बेटी है, यह तो अपने घर जायगी—ऐसा मान लें।

लड़की तो अपने घर जायगी—ऐसा भाव होनेसे लड़केमें जितनी ममता होती है, उतनी लड़कीमें नहीं होती। लड़का बीमार हो जाय तो बड़ा असर पड़ता है, लड़की बीमार हो जाय तो उतना असर नहीं पड़ता। कारण कि यह अपनी नहीं है। जिसको अपना मानते हो, वह बेटा आपकी सारी सम्पत्तिका मालिक होता है। जो आपका बेटा नहीं है और जिसको आप अपना नहीं मानते, वह मालिक नहीं होता। जो अपना होता है, वह मालिक बनता है और अन्तमें वही खोपड़ी बिखेरता है। बेटी न तो मालिक बनती है और न खोपड़ी बिखेरती है। इसलिये सब सम्पत्ति, परिवार आदिको भगवान्‌का मान लें, नहीं तो वे मालिक भी बनेंगे और आपकी दुर्दशा भी करेंगे, फायदा इसमें कुछ नहीं होगा। भगवान्‌का मान लो तो नुकसान कुछ नहीं होगा और फायदा बड़ा भारी होगा।

☯☯☯

६. मिला हुआ और देखा हुआ— संसार

संसारके दो विभाग हम देखते हैं—एक विभाग तो हमें मिला हुआ है, जिसको हम अपना मानते हैं; और एक विभाग हमें मिला नहीं है, पर दीखनेमें आता है। देखा हुआ तो मिला नहीं और मिला हुआ रहेगा नहीं। मिले हुएके साथ न तो हम रहेंगे और न वह हमारे साथ रहेगा—यह हमारा अनुभव है। फिर हम किसके भरोसे बैठे हैं। किसके आधारसे हम यहाँ रह रहे हैं? हमारा आधार एक परमात्मा हैं। उनके आधारसे ही हम टिके हुए हैं। जो दीखता है और जो मिला हुआ है, इसके आधारपर हम नहीं रह सकते। कारण कि दीखनेवाला मिलता नहीं और जो मिला है, वह टिकता नहीं।

'है'—रूपसे एक परमात्मा मौजूद हैं, उन्हींके अन्तर्गत यह संसार दिखायी दे रहा है—

जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥

(मानस १। ११७। ४)

परमात्माकी सत्यतासे ही यह जड़ (असत्) माया सत्य दीखती है। इसका कारण क्या है? ***'मोह सहाया'***—मूढ़ताके कारण असत् माया सत्य दीखती है। कुछ जानते हैं और कुछ नहीं जानते—इस अधूरे ज्ञानका नाम मूढ़ता है, अज्ञान है। कुछ भी न जानें, इसको मूढ़ता नहीं कहते। जैसे, पत्थरको हम मूढ़ नहीं कहते। ऐसा नहीं कहते कि यह पत्थर बड़ा मूढ़ है, अज्ञानी है। मूढ़ता अधूरी जानकारीको कहते हैं। संसार सच्चा नहीं है—यह हम जानते हैं, फिर भी हम उसको सच्चा मानते हैं, यह मूढ़ता है।

सुननेपर, पुस्तकोंके पढ़नेपर और विचार करनेपर तो यह दीखता है कि पहले यह संसार था नहीं और पीछे रहेगा नहीं, फिर भी

इसको 'है' मानकर इसमें राग-द्वेष करते हैं—यह मूढ़ताका नतीजा है। जो पहले नहीं था और अन्तमें भी नहीं रहेगा, उसको बीचमें भी, 'नहीं' मान लेना ज्ञान है, बोध है। जैसे, स्वप्न आनेसे पहले स्वप्न नहीं था और नींद खुलनेके बाद भी स्वप्न नहीं रहेगा; अतः बीचमें भी स्वप्न नहीं है, केवल दीखता है। जो आदि और अन्तमें नहीं होता, वह वर्तमानमें भी नहीं होता—यह सिद्धान्त है।

यह बात बहुत विशेष ध्यान देनेकी है कि यह संसार निरन्तर 'नहीं' में जा रहा है, अभावमें जा रहा है। जैसे, हमारा बचपन चला गया, नहीं रहा। जितने प्राणी हैं, वे भी 'नहीं' में जा रहे हैं। इनमें नहीं रहना ही सत्य है। जैसे कलका दिन आज नहीं रहा, 'नहीं' में भरती हो गया, ऐसे ही अभी आप और हम यहाँ बैठे हैं, यह समय भी 'नहीं' में भरती हो रहा है। इसको वापस नहीं ला सकते। अतः इसमें 'नहीं' ही तत्त्व हुआ, पर मूढ़ताके कारण यह 'है' दीखता है? यह 'है' क्यों दीखता है? इसमें एक सत्य परमात्मा है—***'जासु सत्यता तें'।*** परमात्माके कारण ही इसका होनापन दीखता है। जैसे, रस्सी होनेसे ही उसमें भ्रमसे साँप दीखता है। अगर रस्सी न हो तो साँप भी नहीं दीखेगा।

हम इस बातको जानते हैं कि संसार पहले नहीं था और फिर नहीं रहेगा, फिर भी इसको मानते नहीं। जो जानते हैं, उसको ही मानने लग जायँ—यह जाने हुएका आदर है। परंतु जो जानते हैं, उसको मानते नहीं—यह जाने हुएका निरादर है। जाने हुएके निरादरसे ही हम दुःख पा रहे हैं। अतः जाने हुएका आदर करें। यह संसार तो रहेगा नहीं, पर इससे लाभ ले लें। मिले हुए पदार्थोंको दूसरोंकी सेवामें लगा दें—यही लाभ लेना है। दर्पणमें हम मुख देखते हैं तो उलटा दीखता है। जैसे, हमारा मुख दक्षिणकी तरफ है तो दर्पणमें हमारा मुख उत्तरकी तरफ दीखता है। हमारा

दायाँ भाग दर्पणमें बायाँ भाग हो जाता है और हमारा बायाँ भाग दर्पणमें दायाँ हो जाता है। जैसे दर्पणमें उलटा दीखता है, ऐसे ही यह संसार उलटा दीखता है। अतः जो लोभमें आकर अपने लिये संग्रह करते हैं, वे अपनी हानि करते हैं। परंतु दीखता उलटा ही है—जितना ले लेते हैं, उतना तो लाभ दीखता है और जितना दे देते हैं, उतनी हानि दीखती है। अब उलटा ही दीखता है, इस कारण कही हुई बात भी जँचती नहीं, उलटी दीखती है। इसलिये कहा है— ***खायो सोई ऊबर्‌यो, दीन्हो सोई साथ। जसवँत घर पोढ़ाणिया माल बिराने हाथ॥*** दिया हुआ तो हमारे साथ चलेगा और लिया हुआ यहीं रह जायगा। फिर भी लेनेकी ही चेष्टा होती है, देनेकी नहीं! हमारा स्वार्थ सिद्ध हो जाय, यह चेष्टा तो होती है, पर यह चेष्टा नहीं होती कि दूसरोंको दे दें, दूसरोंका हित कर दें, दूसरोंका स्वार्थ सिद्ध कर दें। दूसरोंका काम करना बुरा दीखता है, जबकि बात यह उलटी है। उलटा दीखना बंद हो जाय और सुल्टा दीखने लग जाय—इसीके लिये हम लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं।

न तो मिला हुआ ठहरेगा और न दीखनेवाला ठहरेगा। वहम यह होता है कि यह तो मिला हुआ है और यह दीख रहा है। ये दोनों ही नहीं रहेंगे। इनमें जो परिपूर्ण हैं, वे एक परमात्मा ही रहेंगे। उन परमात्माका ही आश्रय लिया जाय, उनका ही भजन किया जाय, उनको ही माना जाय, उनका ही चिन्तन किया जाय, तो निहाल हो जायँगे। अगर मिले हुए और देखे हुएके लोभमें फँस जायँगे तो धोखा हो जायगा।

❂❂❂

७. धनके लोभमें निंदा

भीतरकी जो भावना होती है, उसका बड़ा भारी माहात्म्य होता है। एक आदमी बाहरकी क्रिया करता है, शरीरसे सेवा करता है, इसकी अपेक्षा भी भीतरका जो भाव है, उसकी अधिक महिमा है। बड़े दु:खकी बात है कि मनुष्योंने अपने भीतर धनको बहुत ज्यादा महत्त्व दे रखा है। वास्तवमें यह इतना महत्त्व देनेके लायक वस्तु नहीं है। शरीर इसकी अपेक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस शरीरसे परिश्रम करके जो सेवा की जा सकती है, वह रुपयोंसे नहीं की जा सकती। रुपये लगा देनेका वह माहात्म्य नहीं है। परंतु आज रुपयोंका बहुत लोभ है। शरीरसे परिश्रम कर लेंगे, भूखे रह जायँगे, कहीं जाना हो तो पैदल चले जायँगे, पर पैसा खर्च नहीं करेंगे! पैसेकी कीमत बहुत ज्यादा कर दी! पैसोंको शरीरसे भी अधिक महत्त्व दे दिया! शरीरसे परिश्रम करके पैसे पैदा किये जा सकते हैं, पर पैसोंसे शरीर नहीं लिया जा सकता। लाख, दस लाख, पचास लाख रुपये दे दिये जायँ, तो भी उसके बदलेमें मनुष्य-शरीर नहीं मिल सकता। मृत्युके समय अरबों-खरबों रुपये भी दे दिये जायँ तो भी मृत्युसे बच नहीं सकते। दुनियामात्रका सारा धन दे दिया जाय, तो भी एक घड़ीभर जीना नहीं मिल सकता— ऐसा कीमती मानव-शरीरका समय है! वह समय यों ही बर्बाद कर देते हैं—इसके समान कोई नुकसान नहीं है। बीड़ी-सिगरेट पीनेमें, खेल-तमाशा देखनेमें, ताश-चौपड़ खेलनेमें, बातचीत करनेमें, गपशप लड़ानेमें, दूसरोंकी चर्चा करनेमें, निंदा-स्तुति करनेमें, अधिक नींद लेनेमें समय खर्च कर देते हैं, यह बड़ा भारी नुकसान करते हैं। यह कोई मामूली नुकसान नहीं है। दस-बीस हजार रुपये खर्च किये जायँ, तो इसमें कोई नुकसान नहीं है। इनको छोड़कर ही मरना है। लाखों-

करोड़ों हो जायँ तो भी छोड़कर मरना होगा। किसीको कुछ दे दिया, कहीं अच्छे काममें खर्च कर दिया, तो क्या बड़ी बात हुई? यह तो छूटनेवाली वस्तु ही है।

किसीके पास धन बहुत है तो यह कोई विशेष भगवत्कृपाकी बात नहीं है। ये धन आदि वस्तुएँ तो पापीको भी मिल जाती हैं— ***'सुत दारा अरु लक्ष्मी पापी के भी होय।'*** इनके मिलनेमें कोई विलक्षण बात नहीं है। एक राजा थे। उस राजाकी साधु-वेशमें बड़ी निष्ठा थी। यह निष्ठा किसी-किसीमें ही होती है। वह राजा साधु-संतोंको देखकर बहुत राजी होता। साधु-वेशमें कोई आ जाय, कैसा भी आ जाय, उसका बड़ा आदर करता, बहुत सेवा करता। कहीं सुन लेता कि अमुक तरफसे संत आ रहे हैं तो पैदल जाता और उनको ले आता, महलोंमें रखता और खूब सेवा करता। साधु जो माँगे, वही दे देता। उसकी ऐसी प्रसिद्धि हो गयी। पड़ोस-देशमें एक दूसरा राजा था, उसने यह बात सुन रखी थी। उसके मनमें ऐसा विचार आया कि यह राजा बड़ा मूर्ख है, इसको साधु बनकर कोई भी ठग ले। उसने एक बहुरुपियेको बुलाकर कहा कि तुम उस राजाके यहाँ साधु बनकर जाओ। वह तुम्हारे साथ जो-जो बर्ताव करे, वह आकर मेरेसे कहना। बहुरुपिया भी बहुत चतुर था। वह साधु बनकर वहाँ गया। वहाँके राजाने जब यह सुना कि अमुक रास्तेसे एक साधु आ रहा है, तो वह उसके सामने गया और उसको बड़े आदर-सत्कारसे अपने महलमें ले आया, अपने हाथोंसे उसकी खूब सेवा की।

एक दिन राजाने उस साधुसे कहा कि 'महाराज, कुछ सुनाओ।' साधुने कहा कि 'राजन्' आप तो बड़े भाग्यशाली हो कि आपको इतना बड़ा राज्य मिला है, धन मिला है। आपके पास इतनी बड़ी फौज है। आपकी स्त्री, पुत्र, नौकर आदि सभी आपके अनुकूल हैं। इसलिये

भगवान्‌की आपपर बड़ी कृपा है! इस प्रकार उस साधुने कई बातें कहीं। राजाने चुप करके सुन लीं। दो-तीन दिन रहनेके बाद वह साधु (बहुरुपिया) बोला कि 'राजन्, अब तो हम जायँगे।' राजा बोला— 'अच्छा महाराज, जैसी आपकी मर्जी।' राजाने उसके आगे खजाना खोल दिया और कहा कि इसमेंसे आपको जो सोना-चाँदी, माणिक-मोती, रुपये-पैसे चाहिये, खूब ले लीजिये। उस साधुने वहाँसे अच्छा-अच्छा माल ले लिया और ऊँटपर लाद दिया। जब वह रवाना होने लगा, तब राजाने कहा कि 'महाराज, यह तो आपने अपनी तरफसे लिया है। एक चाँदीका बक्सा है, वह मैं अपनी तरफसे देता हूँ।' राजाने एक चाँदीके बक्सेको एक रेशमी जरीदार कपड़ेमें लपेटकर उसको दे दिया और कहा कि 'यह मेरी तरफसे आपको भेंट है।' उस साधुने वह बक्सा ले लिया और वहाँसे चल दिया।

वह साधु (बहुरुपिया) अपने राजाके पास पहुँचा। राजाने पूछा कि 'क्या-क्या लाये?' उसने सब बता दिया कि 'लाखों-करोड़ोंका धन ले आया हूँ।' राजाने समझा कि यह पड़ोसका राजा महान् मूर्ख ही है; क्योंकि इसको साधुकी पहचान ही नहीं है कि कैसा साधु है! यह तो बड़ा बेसमझ है! वह बहुरुपिया बोला कि 'एक बक्सा मुझे उस राजाने अपनी तरफसे दिया है कि यह मेरी तरफसे भेंट है।' राजाने कहा कि 'ठीक है, बक्सा लाओ, उसको मैं देखूँगा।' उसने वह बक्सा राजाके पास रख दिया और उसकी चाबी दे दी। राजाने खोलकर देखा कि चाँदीका एक बक्सा है, उसके भीतर एक और चाँदीका बक्सा है, फिर उसके भीतर एक और चाँदीका छोटा बक्सा है। तीनों बक्सोंको खोलकर देखा तो भीतरके छोटे बक्सेमें एक फूटी कौड़ी पड़ी मिली। राजाने सोचा कि क्या मतलब है इसका! तो वह समझ गया कि यह राजा मूर्ख नहीं है, बड़ा बुद्धिमान् है। साधु-वेशमें इसकी निष्ठा

आदरणीय है। राजाने बहुरुपियेसे पूछा कि 'तुमसे क्या बात हुई, सारी बात बताओ।' उसने कहा कि 'एक दिन उस राजाने मेरेसे कहा कि महाराज, कुछ सुनाओ। मैंने कहा कि तुम तो बड़े भाग्यशाली हो। तुम्हारे पास राज्य है, धन-सम्पत्ति है, अनुकूल स्त्री-पुत्र आदि हैं, तुम्हारेपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है।' यह सुनकर राजा सारी बात समझ गया। तीन बक्से होनेका मतलब था—स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर। इनके भीतर क्या है! भीतर तो फूटी कौड़ी है, कुछ नहीं है। बाहरसे वेश-भूषा बड़ी अच्छी है, बाहरसे बड़े अच्छे लगते हैं, पर भीतर कुछ नहीं है। आपपर भगवान्‌की बड़ी कृपा है—यह जो बात कही, यह फूटी कौड़ी है। यह कोई कृपा हुआ करती है? कृपा तो यह होती है कि भगवान्‌का भजन करे, भगवान्‌में लग जाय।

तात्पर्य यह है कि सांसारिक चीजोंका होना कोई बड़ी बात नहीं है। शास्त्रमें मनुष्य-शरीरकी जो महिमा आयी है, वैसी धनकी महिमा नहीं आयी है, राज्यकी महिमा नहीं आयी है। स्वर्गका जो राजा है, उस इन्द्रकी भी महिमा नहीं आयी है। ***'तीन टूक कौपीन के, अरु भाजी बिन नौन। तुलसी रघुबर उर बसे, इन्द्र बापुरो कौन॥'*** भगवद्भजनके सामने इन्द्रकी भी कोई कीमत नहीं है। परंतु धनको महत्त्व देकर डरते हैं कि यह कहीं खर्च न हो जाय—यह कोई मनुष्यपना है? पर कहें किसको! कोई सुननेवाला नहीं है।

सुना था कि लोग ये बातें सुनकर नाराज हो जाते हैं और कहते हैं कि यह धनकी निंदा करता है। सज्जनो! मैं धनकी निंदा नहीं करता हूँ; किन्तु लोभकी निंदा करता हूँ, तुम्हारी ऐसी बुद्धिकी निंदा करता हूँ कि तुम्हारी बुद्धि कहाँ मारी गयी! लाखों-करोड़ों रुपये रखो, राज्य-वैभव सब रखो, पर बुद्धि तो नहीं मारी जानी चाहिये! कुछ तो होश होना चाहिये आदमीको! कुछ तो अक्ल आनी चाहिये कि हम क्या

कर रहे हैं! ऐसा मनुष्य-शरीर मिला है, जो देवताओंको भी दुर्लभ है— '**दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षण भंगुरः।**' (भागवत ११। २। २९), '***बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥***' (मानस ७। ४३। ४)। ऐसा मानव-शरीर मिला है, और कर क्या रहे हो? इस मनुष्य-शरीरको पाकर तो भगवान्‌का भजन करना चाहिये— '**अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्॥**' (गीता ९। ३३)। भगवान्‌में लगना चाहिये, जिससे सदाके लिये कल्याण हो जाय।

यह धन कितने दिन साथ देगा? आप सोचो, अगर आज प्राण निकल जायँ तो धनका क्या होगा? धनके लिये किया हुआ पाप तो साथ चलेगा, पर धन एक कौड़ी साथ नहीं चलेगा, पूरा-का-पूरा यहाँ रह जायगा। ऐसे धनके लिये अपना भाव बिगाड़ लिया, पाप कर लिया, अन्याय कर लिया, झूठ-कपट कर लिया, भाई-बन्धुओंसे लड़ाई कर ली। इस प्रकार धनके लिये कितने-कितने अन्याय और अनर्थ कर लिये, उस धनसे पतनके सिवाय और क्या होगा?

८. भगवान् प्रेमके भूखे हैं

उपनिषदोंमें आता है कि '**एकाकी न रमते**'। इसका सीधी-सादी भाषामें अर्थ होता है कि भगवान्का अकेलेमें मन नहीं लगा। इसलिये उन्होंने सृष्टिकी रचना की। 'मैं एक ही बहुत रूपोंसे हो जाऊँ'— ऐसे संकल्पसे भगवान्ने मनुष्योंका निर्माण किया। इसका तात्पर्य यह दीखता है कि मनुष्योंका निर्माण भगवान्ने केवल अपने लिये किया है। संसारकी रचना चाहे मनुष्यके लिये की हो, पर मनुष्यकी रचना तो केवल अपने लिये की है। इसका क्या पता? भगवान्ने मनुष्यको ऐसी योग्यता दी है, जिससे वह तत्त्वज्ञानको प्राप्त करके मुक्त हो सकता है; भक्त हो सकता है; संसारकी सेवा भी कर सकता है और भगवान्की सेवा भी कर सकता है। यह संसारकी आवश्यकताकी पूर्ति भी कर सके और भगवान्की भूख भी मिटा सके, भगवान्को भी निहाल कर सके—ऐसी सामर्थ्य भगवान्ने मनुष्यको दी है! और किसीको भी ऐसी योग्यता नहीं दी, देवताओंको भी नहीं दी। भगवान्को भूख किस बातकी है? भगवान्को प्रेमकी भूख है। प्रेम भगवान्को प्रिय लगता है। प्रेम एक ऐसी विलक्षण चीज है, जिसकी आवश्यकता सबको रहती है।

एक आसक्ति होती है और एक प्रेम होता है। किसीसे हम अपने लिये स्नेह करते हैं, वह 'आसक्ति' होती है, राग होता है। रागसे ही कामना, इच्छा, वासना होती है, जो पतन करनेवाली, नरकोंमें ले जानेवाली है। जिसमें दूसरोंको सुख देनेका भाव होता है, वह 'प्रेम' होता है। आसक्तिमें लेना होता है और प्रेममें दूसरोंको देना होता है। दूसरोंको सुख देनेकी ताकत मनुष्यमें है। भगवान्ने मनुष्यको इतनी ताकत दी है कि वह दुनियामात्रका हित कर सकता है और अपना

कल्याण कर सकता है। इतना ही नहीं, मनुष्य भगवान्‌की आवश्यकताकी पूर्ति भी कर सकता है, भगवान्‌के माँ-बाप भी बन सकता है, भगवान्‌का गुरु भी बन सकता है, भगवान्‌का मित्र भी बन सकता है और भगवान्‌का इष्ट भी बन सकता है! अर्जुनको भगवान् कहते हैं— **'इष्टोऽसि मे दृढमिति'** (गीता १८। ६४)।

जैसे लड़का अलग हो जाय तो माँ-बाप चाहते हैं कि वह हमारे पास आ जाय, ऐसे ही यह जीव भगवान्‌से अलग हो गया है, इसलिये भगवान्‌को भूख है कि यह मेरी तरफ आ जाय! इस भूखकी पूर्ति मनुष्य ही कर सकता है, दूसरा कोई नहीं। मनुष्य ही भगवान्‌से प्रेम कर सकता है। देवता तो भोगोंमें लगे हैं, नारकीय जीव बेचारे दुःख पा रहे हैं, चौरासी लाख योनियोंवाले जीवोंको पता ही नहीं कि क्या करें और क्या नहीं करें? इतना ऊँचा अधिकार प्राप्त करके भी मनुष्य दुःख पाता है तो बड़े भारी आश्चर्यकी बात है! होश ही नहीं है कि मेरेमें कितनी योग्यता है और भगवान्‌ने मेरेको कितना अधिकार दिया है! मैं कितना ऊँचा बन सकता हूँ, यहाँतक कि भगवान्‌का भी मुकुटमणि बन सकता हूँ! आप कृपा करके ध्यान दो कि कितनी विलक्षण बात है! जितने भक्त हुए हैं मनुष्योंमें ही हुए हैं और इतने ऊँचे दर्जेके हुए हैं कि भगवान् भी उनका आदर करते हैं! लोग संसारके आदरको ही बड़ा समझते हैं, पर भक्तोंका आदर भगवान् करते हैं, कितनी विलक्षण बात है! सारथि बन जायँ भगवान्! नौकर बन जायँ भगवान्! जूठन उठायें भगवान्! घरका काम-धंधा करें भगवान्! जिस तरहसे माता अपने बच्चेका पालन करके प्रसन्न होती है, इसी तरहसे भगवान् भी अपने भक्तका काम करके प्रसन्न होते हैं।

भगवान्‌का भक्तोंके प्रति एक वात्सल्य भाव रहता है। जैसे, चारेमें गोमूत्र या गोबरकी गंध भी आ जाय तो गाय वह चारा नहीं चरती।

परंतु अपने नवजात बछड़ेको जीभसे चाटकर साफ कर देती है। वास्तवमें वह बछड़ेको साफ करनेके लिये ही नहीं चाटती, इसमें उसे खुदको एक आनन्द आता है। उसके आनन्दकी पहचान यह है कि अगर आप बछड़ेको धोकर साफ कर दोगे तो गायका दूध कम होगा और अगर गाय बछड़ेको चाटकर साफ करे तो उसका दूध ज्यादा होगा। गायकी जीभ इतनी कड़ी होती है कि चाटते-चाटते बछड़ेकी चमड़ीसे खून आ जाता है, फिर भी गाय छोड़ती नहीं; क्योंकि उसको एक आनन्द आता है। वात्सल्य प्रेममें गाय सब कुछ भूल जाती है। 'वत्स' नाम बछड़ेका है और बछड़ेसे होनेवाला प्रेम 'वात्सल्य प्रेम' कहलाता है।

भगवान्‌को भक्तका काम करनेमें आनन्द आता है, प्रसन्नता होती है। मनुष्य भगवान्‌की इच्छाकी पूर्ति कर सकता है, इतनी इसमें योग्यता है! परंतु यह दर-दर भटकता फिरता है—तुच्छ टुकड़ोंके लिये, पैसोंके लिये, भोगोंके लिये ! राम-राम-राम! किधर चला गया तू! भगवान्‌को आनन्द देनेवाला होकर अपने सुखके लिये भटकता है और लालायित होता है! भगवान् भक्तका काम करनेके लिये अपयश सह लेते हैं, तिरस्कार सह लेते हैं, अपमान सह लेते हैं ! भगवान्‌ने भक्तको बहुत ऊँचा दर्जा दिया है।

भगवान् कहते हैं—'**अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।**' (भागवत ९। ४। ६३)। '***मैं तो हूँ भगतनको दास, भगत मेरे मुकुटमणि।***' जिनकी स्फुरणामात्रसे अनन्त ब्रह्माण्डोंकी रचना हो जाती है, ऐसे परमात्मा भक्तके वशमें हो जाते हैं और उसके इशारेपर नाचनेके लिये तैयार हो जाते हैं— '***ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भरि छाछ पे नाच नचावें।***' नौ लाख गायें नंदजीके यहाँ दुही जाती थीं, पर गोपियोंपर भगवान्‌का इतना प्रेम था कि वे कहतीं—'लाला, तुम नाचो

तो तुम्हें छाछ देंगी' तो वे छाछके लिये नाचने लग जाते! हृदयका प्रेम भगवान्‌को बहुत मीठा लगता है। भगवान्‌से कोई कामना नहीं, कोई इच्छा नहीं, केवल भगवान् प्यारे लगें मीठे लगें,—यह भक्तोंका भाव होता है। यह जो प्रेम है, वह दोनोंको भाता है अर्थात् भक्त भगवान्‌से आनन्दित होते हैं और भगवान् भक्तसे। भगवान् और भक्त आपसमें एक-दूसरेको देखकर आनन्दित होते रहते हैं। इतनी योग्यता रहते हुए भी मनुष्य दरिद्री हो रहा है, अभावग्रस्त हो रहा है, यह बड़े भारी आश्चर्यकी बात है! होशमें नहीं आता कि मैं किस दर्जेका हूँ और क्या कर रहा हूँ? तुच्छ चीजोंके पीछे पड़कर यह अपना कितना नुकसान कर रहा है! झूठ, कपट, बेईमानी आदि करके महान् नरकोंमें जानेकी तैयारी कर रहा है। जिसमें यह भगवान्‌की प्राप्ति कर सकता है, उस अमूल्य समयको बर्बाद कर रहा है। हद हो गयी! अब तो चेत करो? जो समय गया, सो तो गया, अब भी लग जाओ भगवान्‌में! संसारके कामको अपना काम न समझकर भगवान्‌का समझ लो, इतनेसे ही भगवान् प्रसन्न हो जायँगे।

☯☯☯

९. दृढ़ निश्चयकी महिमा

मैंने संतोंसे सुना है कि 'परमात्मा हैं'—ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाय तो अपने-आपको जनानेकी जिम्मेदारी भगवान्‌पर आ जाती है। हम भगवान्‌को अपने उद्योगसे नहीं जान सकते, पर 'भगवान् सब जगह हैं'—यह दृढ़ भाव होनेपर भगवान् खुद अपने-आपको जना देते हैं।

भगवान् सब जगह हैं—यह बात हमें जँची हुई है ही, फिर इसमें कमी क्या है? इसमें एक बातकी कमी है कि हम जानते हैं कि यह संसार पहले ऐसा नहीं था और फिर ऐसा नहीं रहेगा तथा अभी भी हरदम बदल रहा है, फिर भी संसारको 'है' मान लेते हैं अर्थात् अपने इस अनुभवका निरादर करते हैं। इस कारण 'परमात्मा हैं'—इस मान्यताकी दृढ़तामें कमी आ रही है। इसलिये अपने अनुभवका आदर करें।

जैसे, जबतक नींद नहीं आती, तबतक स्वप्न नहीं आता और नींद खुलनेके बाद भी स्वप्न नहीं रहता, बीचमें (नींदमें) स्वप्न आता है। बीचमें भी आप उसको सच्चा मान लेते हो, नहीं तो वह है ही नहीं। इसी तरह संसारको मान लें कि यह संसार, शरीर पहले भी नहीं थे, पीछे भी नहीं रहेंगे, बीचमें भी केवल दीखते हैं, वास्तवमें हैं नहीं। अब कोई कहे कि संसार, शरीर आदि प्रत्यक्ष दीखते हैं, इनको 'नहीं' कैसे मानें? तो भाई! स्वप्न दीखनेमें कम सच्चा थोड़े-ही दीखता था। जब दीखता था, तब ठीक सच्चा ही दीखता था। परंतु जगनेपर स्वप्न नहीं दीखता। इससे सिद्ध हुआ कि वह था ही नहीं। आजसे सौ वर्ष पहले ये शरीर थे क्या? और सौ वर्षके बाद ये शरीर रहेंगे क्या? हरेक आदमी मान लेगा कि बिलकुल नहीं रहेंगे। **'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा'** अर्थात् जो आदि और अन्तमें नहीं होता, वह वर्तमानमें भी

नहीं होता। इस दृष्टिसे यह सब-का-सब निरन्तर 'नहीं' में भरती हो रहा है। जितनी उम्र बीत गयी, उतनी तो 'नहीं' में भरती हो ही गयी। अब जितनी उम्र बाकी रही, वह भी प्रतिक्षण 'नहीं' में भरती हो रही है। यह सब संसार प्रतिक्षण अभावमें जा रहा है। जितना जन्म है, वह प्रतिक्षण मृत्युमें जा रहा है। जितना सर्ग है, वह प्रतिक्षण प्रलयमें जा रहा है। जितना महासर्ग है, वह प्रतिक्षण महाप्रलयमें जा रहा है।

इस संसारको नाशवान् कहते हैं। जैसे धनके कारण मनुष्य धनवान् कहलाता है। अगर धन नहीं हो तो वह धनवान् नहीं कहलाता, ऐसे ही संसार नाशवान् कहलाता है, तो इसमें नाशके सिवाय कुछ नहीं है, नाश-ही-नाश है। अगर 'परमात्मा हैं'—यह दृढ़ निश्चय हो जाय तो जो 'नहीं' को 'है' माना है, वह आड़ हट जायगी और परमात्मा प्रकट हो जायँगे! कारण कि परमात्मा तो हैं ही, उनका कभी अभाव नहीं होता। परमात्मा सब जगह होनेसे यहाँ भी हैं, सब समयमें होनेसे अभी भी हैं, सबमें होनेसे अपनेमें भी हैं और सबके होनेसे हमारे भी हैं। उनका अभाव कभी हो नहीं सकता, कभी हुआ नहीं, जब कि संसारमात्रका अभाव प्रतिक्षण हो रहा है। दो ही तो चीजें हैं—परमात्मा और संसार। परमात्माका तो अभाव नहीं हो सकता और संसारका भाव नहीं हो सकता—ऐसा यथार्थ दृष्टिसे दृढ़तापूर्वक जानते ही संसारकी जगह परमात्मा दीखने लग जायँगे। अभी भी परमात्मा ही दीखते हैं; क्योंकि संसारकी तो सत्ता ही नहीं है। परमात्माकी सत्तासे ही यह संसार सत्य क्यों दीख रहा है। इसमें सत्य तो एक परमात्मा ही हैं। तो फिर यह संसार सत्य क्यों दीखता है? *'जासु सत्यता तें जड़ माया। भास सत्य इव मोह सहाया॥'* (मानस १। ११७। ४)। मूर्खतासे ही यह संसार सत्य दीखता है। जो जानता है, पर मानता

नहीं, उसे मूर्ख कहते हैं। जानता है कि यह संसार नाशवान् है फिर भी इसको स्थिर मानता है—यही मूर्खता है। हम जितना जानते हैं, उतना मान लें तो मूर्खता नहीं रहेगी और हम निहाल हो जायँगे।

परमात्माको तो मान लें और संसारको जान लें। परमात्माको कैसे मानें? कि परमात्मा तो हैं; और संसारको कैसे जानें? कि संसार नहीं है। संसारको ठीक जान लेने पर परमात्मा प्रकट हो जाते हैं। 'यह बात ठीक दीखती है, तो फिर जँचती क्यों नहीं?' इसमें कारण यह है कि संसारसे सुख लेते हो। जबतक सांसारिक सुखका लोभ रहेगा, तबतक यह 'संसार नाशवान् है, असत्य है'—ऐसा कहनेपर भी दीखेगा नहीं।

काला भौंरा बाँसमें छेद करके रहता है। बाँस कितना कड़ा होता है, पर भौंरेके दाँत इतने कठोर होते हैं कि उसमें भी गोल-गोल छेद कर देता है! परंतु जब वह कमलके भीतर बैठता है, तब रातमें कमलके बन्द होनेपर भी वह उसे काटकर बाहर नहीं जाता। वह सोचता है कि रात चली जायगी, प्रभात हो जायगा, सूर्यका उदय हो जायगा, तब कमल खिल जायगा और उस समय मैं उड़ जाऊँगा। वह बाँसमें छेद कर देता है, पर कमलकी पंखुड़ी उससे नहीं कटती। क्या वह इतना कमजोर है? वह उस कमलसे सुख लेता है, इसलिये कमजोर हो जाता है! ऐसे ही यह मनुष्य संसारसे सुख लेता है, इसलिये यह कमजोर हो जाता है। बीकानेरकी बोलीमें एक बात आती है— ***'रांडरा काचा'*** अर्थात् स्त्रीके आगे बिलकुल कच्चा, स्त्रीका गुलाम। इस संसाररूपी स्त्रीके आगे यह मनुष्य कच्चा, कमजोर हो जाता है। कच्चापन क्या है? संसारसे सुख लेता है, यही कच्चापन है। इस कच्चापनको दूर करना है।

'परमात्मा हैं'—यह तो मान्यता है और 'संसार नाशवान् है'—यह प्रत्यक्ष है। संसारको ठीक जान लो तो परमात्मा प्रकट हो

जायँगे, इतनी-सी बात है। थोड़ी देर बैठकर इस बातको जमा लो कि बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे सब जगह परमात्मा ही हैं। जैसे समुद्रमें गोता लगानेपर चारों तरफ जल-ही-जल है, ऐसे ही सब जगह परमात्मा-ही-परमात्मा हैं। संसार तो बेचारा यों ही नष्ट हो रहा है!

श्रोता—संसारका सुख लेना कैसे मिटे ?

स्वामीजी—इसको अपनी कच्चाई समझें, तो यह मिट जायगा। इसको तो आप मिटायेंगे, तभी मिटेगा। दूसरा नहीं मिटा सकता। अतः आप अपना पूरा बल लगायें। फिर भी न मिटे तो 'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारें। यह नियम है कि जब आदमी निर्बल हो जाता है, तब वह सबलका सहारा लेता ही है। एक तो सांसारिक सुखासक्तिको मिटानेकी चाहना नहीं है और एक हम उसको मिटाते नहीं हैं, ये दो बाधाएँ हैं। ये दोनों बाधाएँ हट जायँ, फिर भी सुखासक्ति न मिटे तो उस समय आप स्वतः परमात्माको पुकार उठोगे। बालककी भी मनचाही नहीं होती तो वह रो पड़ता है और रोनेसे सब काम हो जाता है। ऐसे ही सज्जनो! उस प्रभुके आगे रो पड़ो तो सब काम हो जायगा। वे प्रभु सर्वथा सबल हैं। उनके रहते हम दुःख क्यों पायें? भगवान् हमारे हैं। बालक कहता है कि माँ मेरी है, तो माँको उसे गोदमें लेना पड़ेगा। वह तो केवल एक जन्मकी माँ है; परंतु वे प्रभु सदाकी और सबकी माँ है।

☯☯☯

१०. तत्त्वका अनुभव कैसे हो?

किसीसे अनुभवकी बात पूछना और अनुभवकी बात कहना—ये दोनों ही बढ़िया चीज नहीं हैं। दूसरी बात, कोई भी व्याख्यानदाता अपनी दृष्टिसे बढ़िया-से-बढ़िया बात ही कहेगा; क्योंकि अपनी इज्जत सभी चाहते हैं। वह भी तो अपनी इज्जत चाहता है, इसलिये वह घटिया बात क्यों कहेगा? वह अपना अनुभव छिपायेगा ही कैसे?

संतोंकी वाणीमें आया है कि साधु-संतकी परीक्षा शब्दसे होती है ***'साधु पिछानिये शबद सुनाता।'*** वह क्या बोलता है—इससे उसके भावोंका पता लग जाता है। किसी भी आदमीसे आप ठीक तरहसे बात करो, उसकी बातोंपर ध्यान दो तो उसके भीतरके भावोंका पता लग जायगा कि वह कैसा है? कहाँतक पहुँचा हुआ है?

गीताको देखनेसे पता लगता है कि भगवान्‌का क्या भाव है। गीता पढ़नेपर हमारी समझमें यह बात आयी कि भगवान्‌ने दो बातोंपर विशेष जोर दिया है—एक तो जीवन-पर्यन्त साधन करना और दूसरा अन्तकालमें सावधान रहना। इन दो विषयोंपर भगवान् जितना बोले हैं, उतना दूसरे किसी विषयपर नहीं बोले।

श्रोता—उस तत्त्वका अनुभव कैसे हो महाराजजी?

स्वामीजी—पहले यह बात मान लो कि सब कुछ परमात्मा ही है; हमारेको दीखे, चाहे न दीखे; हमारी समझमें आये, चाहे न आये। गीताका खास सिद्धान्त है—'**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥**' (७। १९) अर्थात् सब कुछ परमात्मा ही है—ऐसा अनुभव करनेवाला महात्मा बहुत दुर्लभ है। ऐसे ऊँचे दर्जेके महात्माओंकी बातें हमने सुनी हैं, पुस्तकोंमें पढ़ी हैं कि वे किसीको कोई बात समझाते हैं या प्रश्नका उत्तर देते हैं, तो भी उनके मनमें यह बात नहीं आती कि मैं तो समझदार हूँ और ये बेसमझ हैं, अनजान हैं।

इनको मैं जना दूँ; यह सीखता है तो मैं सिखा दूँ—ऐसा भाव नहीं रहता। तो क्या भाव रहता है? कि हमारे प्रभु ही व्यापक रूपसे होकर पूछ रहे हैं। उनकी जो धारणा है, उसके अनुसार मैं कह रहा हूँ—इस तरह प्रभुकी मैं सेवा कर रहा हूँ। मेरे भीतर जो बोलनेकी एक आसक्ति है, कामना है, उसको पूरी करनेके लिये प्रभु अनजान बनकर पूछते हैं। केवल मेरेपर कृपा करनेके लिये ही पूछते हैं। मेरी बोलनेकी आसक्तिको मिटानेके लिये ही प्रभुने यह सब संयोग रचा है, यह उनकी ही लीला है। संसारका जो स्वरूप दीखता है, वह तो प्रभुका स्वरूप है और संसारकी जो चेष्टा है, वह सब प्रभुकी लीला है। प्रभु ही मेरेपर कृपा करनेके लिये विलक्षण रीतिसे लीला कर रहे हैं। उनका किसीसे कोई मतलब नहीं है, कोई प्रयोजन नहीं है; उनको न तो किसीसे कुछ लेना है, न कुछ सीखना है, वे तो केवल कृपा करके ऐसा कर रहे हैं। अतः उनकी कृपा-ही-कृपा है—यह बात हम लोगोंको मान लेनी चाहिये। जो महापुरुषोंका अनुभव है, उसको हम पहले ही मान लें तो फिर वह दीखने लग जायगा।

हम पढ़ाई करते हैं तो अध्यापक 'क, ख, ग, घ ......' लिखकर बता दे और हम वैसे ही मानकर याद कर लें तो हम पढ़े-लिखे हो जायँगे। ऐसे ही अंग्रेजीकी 'A, B, C, D ....' लिखकर बता दे और हम वैसे ही मानकर सीख लें तो हमें अंग्रेजी आने लगेगी। अब इसका तो पता लगता नहीं कि 'A'—यह 'ए' कैसे हुआ? दो लाइनें इस तरह खींच दीं तथा एक लाइन बीचमें लगा दी और कहा कि यह 'A' है, तो हमने मान लिया कि ठीक है साहब, यह 'ए' है। अब माननेके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। अध्यापक जैसा कह दे, उसकी हाँ-में-हाँ मिला दे तो हम सीख जायँगे और एक दिन पंडित हो जायँगे। ऐसे ही जो संत-महात्मा हैं, जिनपर हमारी श्रद्धा है, वे

जैसा कहें, उनकी हाँ-में-हाँ मिला दे तो फिर हमें वैसा ही अनुभव हो जायगा, इसमें किंचिन्मात्र भी संदेह नहीं है। अक्षरोंके ज्ञानमें तो छोटा-बड़ा होता है अर्थात् कोई छोटा विद्वान् होता है, कोई बड़ा विद्वान् होता है; परंतु तत्त्वज्ञानमें छोटा-बड़ा होता ही नहीं। आजतक सनकादिक, नारदजी, व्यासजी आदि जितने बड़े-बड़े महापुरुष हुए हैं, उनको जो बोध प्राप्त हुआ है, वही बोध आज एक साधारण आदमीको प्राप्त हो सकता है; जिससे बढ़कर कोई विद्वत्ता नहीं है, जिससे बढ़कर कोई सुख-आनन्द नहीं है, जिससे बढ़कर कोई उन्नति नहीं है, जिससे बढ़कर कोई चीज नहीं है, उसको मनुष्यमात्र प्राप्त कर सकता है। उस तत्त्वको प्राप्त करनेके लिये ही मनुष्यका निर्माण हुआ है। खाना-पीना, सोना आदि तो कुत्तोंमें, गधोंमें भी होता है। उनमें भी बाल-बच्चे होते हैं, परिवार होता है। अब इतना ही काम मनुष्यने कर लिया तो मनुष्यजन्मकी महिमा क्या हुई ? यह तो पशुपना ही है। आकृति तो मनुष्यकी दीखती है, पर मनुष्यपना नहीं है। मनुष्यपना तो वह है, जिसके लिये भगवान्‌ने कृपा करके मनुष्य-शरीर दिया है— ***'कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥'***(मानस ७।४४।३)। ऐसे मौकेको भोग भोगने और संग्रह करनेमें ही लगा दिया ! यह तू किस काममें लग गया? यह क्या धंधा बीचमें ही छेड़ दिया? कहाँ पहुँचना था तुझे और कहाँ बीचमें अटक गया? ये भोग भी यहीं छूट जायँगे, शरीर भी यहीं छूट जायगा, रुपये भी यहीं छूट जायँगे। जो छूट जायँगे उनसे तुझे क्या मिला? असली मिलना तो वह है, जो कभी छूटे नहीं, सदा साथ रहे। इसलिये सज्जनो! चीज तो वह लो, जो सदा साथ रहे, कभी इधर-उधर हो ही नहीं। शरीरके टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाँयँ, तो भी उस चीजको कोई हमारेसे छीन न सके।

एक बहुत दामी बात बताता हूँ, जो मैंने पुस्तकोंमें पढ़ी है और

संतोंसे सुनी है। परमात्मा हैं और वे सब समयमें हैं। कोई ऐसा समय नहीं जिसमें वे नहीं हों। समय उनके अन्तर्गत है। उनका किसी भी समयमें अभाव नहीं होता, पर उनमें समयका अभाव हो जाता है। वे परमात्मा सब समयमें हैं, तो अभी भी हैं। अगर अभी नहीं हैं तो सब समयमें कैसे हुए? वे सब जगह हैं, तो यहाँ भी हैं। अगर यहाँ नहीं हैं तो उनको सब जगह कैसे कहा जाय? वे सबमें हैं, तो मेरेमें भी हैं। अगर मेरेमें नहीं हैं तो उनको सबमें कैसे कहा जाय? एक और विलक्षण बात है कि वे अपने हैं! शरीर अपना नहीं है, मन अपना नहीं है, बुद्धि अपनी नहीं है, इन्द्रियाँ अपनी नहीं हैं; क्योंकि ये सब-के-सब प्रकृतिके कार्य हैं, जड़ हैं, उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं।

जैसे, आप कहते हैं कि 'मैं हूँ', तो इसमें कोई संदेह होता है क्या कि 'मैं हूँ कि नहीं हूँ'? किसीसे पूछना पड़ता है क्या? किसीसे गवाही लेनी पड़ती है क्या? यह तो स्वतःसिद्ध है। इस 'मैं हूँ' में 'मैं'-पन तो प्रकृतिको लेकर है और 'हूँ'-पन 'है'—(परमात्मा-)को लेकर है। वह 'है' ही 'हूँ' हुआ है। प्रकृतिसे सम्बन्ध छूटते ही 'है' रह जाता है और 'हूँ' पन मिट जाता है—यह संतोंका अनुभव है। इस बातको आप दृढ़तासे मान लें, तो काम ठीक हो जायगा। इसमें एक बड़ी बाधा है। वह बाधा क्या है? यह बताता हूँ। आप विशेष ध्यान दें। साधन, भजन, ध्यान करनेपर भी इधर दृष्टि नहीं जाती। वर्षोंतक व्याख्यान देनेपर भी यह बात मेरे अक्लमें नहीं आयी। वही बात अभी आपको सीधी कह दूँ, जिसे आप अभी मान लो। यह जो संयोगजन्य सुख है, इसका हम जो रस लेते हैं, बस, यही खास बाधा है। खाना-पीना, सोना-जागना, बैठना-बोलना तथा मान-बड़ाई आदि जितने हैं, इनके सम्बन्धसे एक सुख होता है। इस सुखमें जो आसक्ति तथा खिंचाव है, यही खास बाधा है। इसको मिटानेका उपाय क्या है? यह भाव हो जाय कि दूसरोंको सुख कैसे हो। कोई बढ़िया चीज है तो वह

दूसरोंको कैसे मिले? यह कपड़ा बढ़िया है तो दूसरोंको कैसे मिले? मान-बड़ाई बढ़िया है तो दूसरोंको कैसे मिले? इस प्रकार दूसरोंको देनेका भाव बन जाय। यह बड़ा सुगम उपाय है संयोगजन्य सुखसे छूटनेका! यह काम आप घरसे ही शुरू कर दो। माता-पिता, स्त्री-पुरुष आदि सबको सुख पहुँचाना है, पर उनसे सुख नहीं लेना है। आप उनको सुख पहुँचाते हैं, पर भाव यह रहता है कि पुत्र मेरा कहना माने, माँकी मैं सेवा करूँ तो वह अपने गहने आदि मेरेको ही दे—यहीं खतरा है। लेनेका भाव ही खास बाँधनेवाली चीज है। अतः लेनेका भाव छोड़कर केवल माँकी प्रसन्नताके लिये ही माँकी सेवा करो। माँसे कह दो कि आपके पास जो गहना, रुपया आदि है, वह चाहे मेरे भाईको दे दो, चाहे मेरी बहनको दे दो, चाहे ब्राह्मणको दे दो, जहाँ आपकी मर्जी हो, वहाँ दे दो। पर मेरेसे तो केवल सेवा ले लो, इसमें आप संकोच मत करो।

हमारा काम केवल सेवा करना है। माता-पिताकी सेवा करनी है। स्त्रीको विवाह करके लाये तो उसको दुःख न हो—यह हमारा कर्तव्य है, चाहे वह हमारी सेवा करे या न करे। वह हमें तंग करे, दुःख दे तो ऐसा मानो कि भगवान्‌ने हमारेपर बड़ी कृपा की है। अगर वह मनोऽनुकूल सेवा करती तो हम मोहमें फँस जाते। भगवान् ही माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदिके रूपमें मेरेसे सेवा ले रहे हैं—ऐसा भाव हो जाय तो सुखकी आसक्ति छूट जायगी। वह छूटी और परमात्माकी प्राप्ति हुई; क्योंकि परमात्मा तो हैं ही सब जगह। सब देशमें, सब कालमें, सब वस्तुओंमें, सम्पूर्ण घटनाओंमें, सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें वे ही तो हैं। दूसरा आये कहाँसे? अतः परमात्मप्राप्तिका बड़ा सुगम उपाय है कि सुख दे दें, और बाधा है—सुख ले लें।

◎◎◎

११. कारागार—एक शिक्षालय

(नागपुरके कारागारमें किया गया एक प्रवचन)

जबतक परमात्माकी प्राप्ति न हो जाय, तबतक सभी जीव कैदी हैं। आप ऐसा न समझें कि हम बड़े नीचे दर्जेके हैं। हम सभी परमात्माकी संतान हैं ! जैसे आप इस कारागारमें पराधीन होकर आये हैं, स्वाधीन होकर नहीं आये, ऐसे ही हम सब-के-सब इस संसारमें पराधीन होकर ही आये हैं और यहाँ आकर अपने-अपने किये हुए कर्मोंका फल भोगते हैं। जबतक कर्मोंके परतन्त्र होकर उनका फल भोगते हैं, तबतक हम कैदी ही हैं।

मनुष्ययोनि ही ऐसी है, जिसमें आकर मनुष्य परमात्मतत्त्वको प्राप्त कर सकता है। सदाके लिये स्वाधीन हो जाय, पराधीनता सर्वथा मिट जाय, इसके लिये ही मनुष्य-शरीर मिला है। इसमें सुख और दुःख—दो तरहके भोग होते हैं। सुखके भोगमें मनुष्य समझता है कि मैं स्वाधीन हूँ और दुःखके भोगमें वह समझता है कि मैं पराधीन हूँ। परंतु यह बेसमझीकी बात है। अगर हम सुखके भोगमें स्वतन्त्र होते तो फिर सुख-ही-सुख भोगते, दुःख भोगते ही नहीं। परंतु यह अपने हाथकी बात नहीं है। हमें सुख और दुःख दोनों ही भोगने पड़ते हैं।

दुःखके भोगमें एक विलक्षण बात है—सुखके भोगमें तो अपने पुण्योंका नाश होता है, पर दुःखके भोगमें पापोंका नाश होता है! आप यहाँ पापोंका नाश करनेके लिये आये हैं। कोई-न-कोई पाप होता है, तभी मनुष्य कैदमें आता है। कैदकी जितनी अवधि है, उतनी अवधितक कैदमें रहनेपर उसके पाप नष्ट होते हैं और पाप नष्ट होनेसे वह पवित्र बनता है। इसलिये अब आपको और हमको, सबको चाहिये कि दुःखोंसे छूटनेके लिये पाप-अन्याय, दुर्गुण-दुराचार,

शास्त्रमर्यादासे विरुद्ध कोई काम न करें। इस बातकी शिक्षा यहाँ आपको क्रियारूपसे मिलती है।

यह कारागार एक शिक्षालय है। इसमें यह शिक्षा मिलती है कि अब आगे ऐसा पाप नहीं करें। संसारमात्रमें बीमारीसे, घाटा लगनेसे, अपमान होनेसे, निंदा होनेसे जो दुःख होता है, वह दुःख शिक्षा देनेके लिये होता है कि हमने कभी-न-कभी पाप किया है, उसीका फल यह दुःख है। इसलिये अब आगे कोई पाप नहीं करेंगे— यह शिक्षा लेनी चाहिये। पुराने पापोंका फल भोगनेसे वे पाप नष्ट हो जाते हैं। पाप नष्ट होनेपर हम शुद्ध, निर्मल हो जाते हैं।

यहाँ जो अनुकूलता आती है, नफा हो जाता है, धन मिल जाता है—यह सब पुण्यका फल है। जो प्रतिकूलता आती है, घाटा लग जाता है, कोई मर जाता है, बीमारी आ जाती है—यह सब पापका फल है। पुण्योंका फल भोगनेके लिये स्वर्गमें जाते हैं और वहाँका सुख भोगते हैं। सुख भोगनेसे पुण्योंका नाश हो जाता है और पुनः मृत्युलोकमें गिरना पड़ता है— '**क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।**' (गीता ९। २१)। पाप नष्ट होते हैं दुःखसे तथा पुण्य नष्ट होते हैं सुखसे। सुख भोगनेसे तो पुण्योंका नाश होता है और अपना स्वभाव बिगड़ता है, इससे पापोंके बीज बोये जाते हैं। परंतु दुःखमें तो लाभ-ही-लाभ होता है, नुकसान होता ही नहीं। जितना दुःख, कष्ट आता है, वह पुराने पापोंका नाश करता है और आगेके लिये सावधान करता है।

राजा प्रजाका माता-पिता होता है। वह प्रजाका हित चाहता है। अतः आपके हितके लिये ही आपको यहाँ भरती किया है, जिससे आपके जीवनमें कोई दोष रहे ही नहीं, आप पवित्र बन जायँ। आप ऐसा न समझें कि कैदखानेमें आकर हम पराधीन हो गये। इसको शिक्षालय समझें। यहाँ क्रियात्मक शिक्षा दी जाती है। यह अपवित्र नहीं है। यहाँ भगवान् श्रीकृष्णने जन्म लिया था। इसलिये सभ्य लोग

कारागारको 'कृष्ण-जन्म-स्थान' कहते हैं। कारागारमें अवतार लेकर भी भगवान् श्रीकृष्ण कितने बड़े हो गये? उनकी शिक्षा 'श्रीमद्भगवद्गीता' का विदेशी लोग भी आदर करते हैं। कोई भी आदमी अगर विद्वान् होगा तो वह गीताका आदर जरूर करेगा।

यहाँ आपकी बहुत बड़ी उन्नति हो सकती है। यहाँ रहकर अच्छे काम करें, अच्छा बर्ताव करें। सबके साथ सेवाका बर्ताव करें, आदरका बर्ताव करें, उनको सुख पहुँचानेका बर्ताव करें। यहाँ आप तरह-तरहके काम-धन्धे भी सीखते होंगे। उससे भी बहुत बड़ा फायदा होता है। एक विद्या आ जायगी, उस विद्यासे आप आगे कमाकर खा सकते हैं। मैं यहाँके फायदेसे परिचित नहीं हूँ। मेरा और कई जगह जानेका काम पड़ा है। बीकानेरके कैदखानेमें देखा था कि वहाँ बड़ी अच्छी-अच्छी दरियाँ, गलीचे आदि बनते हैं। ऐसी-ऐसी सुन्दर-सुन्दर चीजें बनती हैं, जो विदेशोंमें भी जाती हैं। जब गंगासिंहजी महाराज बीकानेरके राजा थे, तब वे एक बार इंग्लैण्ड गये। वहाँ उन्होंने बहुत कीमत देकर एक गलीचा खरीदा। वहाँसे वापस आकर उन्होंने बीकानेर-जेलमें गलीचा-बुनाईपर जो अफसर था, उसको बुलाकर कहा कि 'देखो, ऐसा गलीचा अपने यहाँ भी बुनवाओ। यह मैं इंग्लैण्डसे लाया हूँ।' गलीचा देखकर उसने बताया कि 'अन्नदाता! यह तो अपनी जेलका ही बना हुआ है, वहाँ जानेसे बड़ा कीमती हो गया। यह देखिये, अपनी जेलसे बने हुएका चिह्न।'

यहाँ काम करनेमें तो आपको ऐसा लगता है कि हम परवश होकर करते हैं; पर उसको भी अगर आप सीख लेंगे तो वह विद्या आपके हाथ लग जायगी। उस विद्यासे आप जहाँ रहें, वहाँ काम कर सकते हैं। बड़े-बड़े धनी व्यापारियोंके यहाँपर आप इकट्ठे होकर कहो कि हमें ऐसा-ऐसा काम आता है, तो उनकी सहायतासे आप देशकी बड़ी उन्नति कर सकते हैं।

यहाँ रहते हुए भी आपसमें अच्छा बर्ताव करना सीखें। दूसरोंकी आज्ञामें रहना—यह उन्नतिका तरीका है। आप ध्यान दें। दुष्टोंके परतन्त्र होनेसे तो आदमी दुःख पाता है; परंतु जो सज्जनोंके परतन्त्र होता है, वह स्वतन्त्र बनता है और सुख पाता है। जितने बड़े-बड़े विद्वान् हुए हैं, वे बाल्यावस्थामें विद्वानोंके अधीन रहकर ही विद्वान् बने हैं। जितने संत-महात्मा हुए हैं, अपने गुरुजनोंकी सेवा करके, उनके अधीन रहकर ही संत-महात्मा बने हैं। बड़े ऊँचे दर्जेके महापुरुषोंने भी बचपनमें परतन्त्रताको स्वीकार किया है। सज्जनोंकी, हितैषियोंकी जो परतन्त्रता होती है, वह स्वतन्त्रताको देनेवाली होती है। परंतु जो अपनी इन्द्रियोंके और मनके वशमें होते हैं, वे परतन्त्र ही रहते हैं। उनको बार-बार नरकोंमें जाना पड़ता है, बड़े-बड़े कष्ट पाने पड़ते हैं। इसलिये इन्द्रियोंको तथा मनको वशमें करके अच्छे कामोंमें लगे रहना चाहिये। इन्द्रियोंके, मनके भोगोंके वशमें होनेसे अभी तो स्वतन्त्रता दीखती है, पर आगे परतन्त्रता आ जाती है—यह स्वतन्त्रतामें भी परतन्त्रता है। सज्जनोंकी परतन्त्रतामें भी स्वतन्त्रता है।

अच्छे आचरण करो, अच्छे गुण सीखो, अच्छे भाव सीखो। अपने जीवनको सदा ही पवित्र बनाओ। पवित्र बननेके लिये यह बड़ा ही सुन्दर मौका है; क्योंकि यह जगह पापी बननेके लिये नहीं है, प्रत्युत शुद्ध बननेके लिये है।

भगवन्नामकी बड़ी भारी महिमा है। एकनाथजी, तुकारामजी आदि जितने बड़े-बड़े संत-महापुरुष हुए हैं, उन्होंने नाम-जपकी बहुत महिमा गायी है। वह नाम-जप आप करते रहो। भगवन्नाम लेनेके लिये आप परतन्त्र नहीं हो। काम-धंधा करते हुए भी भगवन्नाम लेते रहो। चाहे राम, कृष्ण, गोविन्द, वासुदेव आदि कहो, चाहे विट्ठल-विट्ठल कहो। आपको भगवान्‌का जो नाम प्यारा लगे, वह नाम आप लेते रहो।

भगवान्‌के नामोंमें तो भेद है, पर उनके फलमें भेद नहीं है। उनमें भी जिस नाममें आपकी अधिक रुचि हो, उसीका जप करें। इससे अधिक लाभ होता है। मन लगाकर भगवान्‌के नामका जप करें। मन न लगे तो भी एक ऐसी आदत बना लें कि काम-धंधा करते हुए भी नामजप होता रहे। संतोंने कहा है— *'हाथ काम मुख राम है, हिरदै साँची प्रीत। दरिया गिरस्ती साध की, याही उत्तम रीत।'* इस प्रकार यहाँ रहते हुए आप भी भगवान्‌का नाम लेते रहें तो आप भी सन्त हो जायँगे। स्वराज्य-प्राप्तिके लिए अच्छे-अच्छे लोगोंने भी कैद भोगी थी; परंतु भोगी थी धर्मके लिये, पापोंके कारण नहीं। 'कल्याण' के सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भी राजनैतिक कैदीके रूपमें जेलखानेमें रहे थे। वहाँ रहकर वे लोगोंको दवाइयाँ वितरण किया करते और भजन-स्मरण किया करते थे। जेलमें उन्होंने लगभग दो हजार पुस्तकें पढ़ीं और नामजपका अभ्यास किया। वे अँगुलीपर नाम-जप किया करते और गिनतीके लिये लकड़ीसे दीवारपर लाईन खींच देते। इस तरह उन्होंने खूब नाम-जप किया। अतः नाम-जपका अभ्यास करनेका यहाँ बड़ा ही सुन्दर मौका है। आपको ज्यादा बोलनेका काम भी नहीं पड़ता। आपके जो अफसर हैं, उनको तो शासन करना पड़ता है, बोलना पड़ता है; परंतु आपके लिये तो कुछ बोलनेकी आवश्यकता नहीं। इसलिये आप विशेषतासे नाम-जप करें। थोड़ी-थोड़ी देरके बाद 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं; हे नाथ! आपके चरणोंमें मेरा प्रेम हो जाय'—इस प्रकार भगवान्‌से प्रार्थना करते रहें और नाम-जप करते रहें।

हृदयसे सबका भला चाहें। किसीका भी बुरा न चाहें। किसीने आपपर मुकदमा करके आपको कैद करा दी है तो उसका भी बुरा न चाहें; क्योंकि उसने आपको शुद्ध बनानेके लिये ही ऐसा किया है। आप शुद्ध बन जायँगे तो आपको बार-बार जन्म नहीं लेना

पड़ेगा, बार-बार कैदमें नहीं आना पड़ेगा। माँके गर्भमें रहना भी एक बड़ा भारी कैदखाना है। वहाँ जीव बड़े कष्टसे रहता है, बहुत दुःख पाता है; परंतु पापोंके कारण वहाँ बार-बार आना पड़ता है। इसलिये कारणको ही मिटा दो तो कार्य अपने-आप मिट जायगा— '**मूलाभावे कुतः शाखा**।' जब मूल ही कट जायगा, तो शाखा कैसे निकलेगी? अतः पाप, अन्याय, दुराचार आदि करना ही नहीं है। न चोरी करनी है, न डाका डालना है, न किसीका अनिष्ट करना है। तनसे, मनसे, वचनसे जो दूसरोंको दुःख देता है, उसको दुःख पाना ही पड़ेगा— यह एकदम सच्ची बात है। जैसा बीज बोया जाता है, वैसा ही वृक्ष होता है और वृक्षसे फिर वैसा ही बीज आता है। ऐसे ही जो दूसरोंको दुःख देता है, उसको दुःख पाना ही पड़ता है। दूसरोंको दुःख देकर चाहे अभी सुखी हो जाय, दूसरोंका धन छीनकर चाहे अभी धनी बन जाय, दूसरोंको मारकर चाहे अभी राजी हो जाय; परंतु अन्तमें दुःख पाना ही पड़ेगा, बच सकेगा नहीं। परमात्माके यहाँ बड़ा इंसाफ है, बड़ा न्याय है। यहाँ तो झूठ-कपट करके भी आदमी दण्डसे बच सकता है, पर परमात्माके यहाँ नहीं बच सकता। वहाँ झूठे गवाह नहीं मिलेंगे और वकील-मुखत्यार भी नहीं मिलेंगे। वहाँ तो अपने किये हुएके अनुसार दण्ड भोगना पड़ेगा।

आप थोड़ा-सा ध्यान दें। जैसे पंखा चलता है, बत्ती जलती है, लाउडस्पीकरसे आवाज होती है—ये सब काम बिजलीसे होते हैं। जब बिजलीघरका आदमी आता है, तब वह आप लोगोंसे यह नहीं पूछता कि आपने कितनी बिजली जलायी, कैसे जलायी, कब जलायी? बिजलीका यन्त्र (मीटर) लगा रहता है। उस यन्त्रको देखकर वह आपके पास बिल भेज देता है कि इतने नम्बर (यूनिट) आये हैं, इतने पैसे हुए। वे पैसे आपको चुकाने पड़ते हैं। इसी तरहसे आप, हम जितने मनुष्य हैं, उनके भीतर भी एक मीटर रखा हुआ है। इस

शरीरके ऊपर गरदनसे खोपड़ीतक यह मीटर लगा है। हम जैसा देखते हैं, जैसा सुनते हैं, जैसा चखते हैं, जैसा स्पर्श करते हैं, जैसा सूँघते हैं, वह सब इस मीटरमें अंकित हो जाता है। हमारे मनमें किसीका नुकसान करनेकी भावना पैदा होती है, तो वह भी इस मीटरमें अंकित हो जाती है। जेलखानेमें पहरा देनेवालोंके गलेमें एक यन्त्र लटका देते हैं। वह जितनी नींद लेता है, उतना उस यन्त्रमें अंकित हो जाता है। इसी तरहसे हमारे भीतर भी ऐसे यन्त्र रखे हुए हैं, जिनके अनुसार आगे दण्डकी और पुरस्कारकी व्यवस्था होगी। वे यह नहीं पूछेंगे कि कितना किया और क्या किया? ऐसा पूछनेकी जरूरत ही नहीं है, वे खुद ही सब देख लेंगे। यहाँ तो सत्य बुलवानेके लिये पहले आदमीको बेहोश कर देते हैं। उस अवस्थामें जो संस्कार पड़े हुए होते हैं, उसके अनुसार जैसी बात होती है, वह खोल देता है। परंतु हमारे भीतर ऐसा सुन्दर यन्त्र रखा हुआ है, जिसमें बोलनेकी जरूरत ही नहीं पड़ती! भीतरके भावोंका अपने-आप पता लग जाता है। उसके अनुसार ही सुखदायी और दुःखदायी परिस्थिति आती है।

दुःखदायी परिस्थिति जितनी लाभदायक होती है, सुखदायी परिस्थिति उतनी लाभदायक नहीं होती। सुखभोग दीखता तो अच्छा है, पर उसका नतीजा खराब होता है। सुख भोगनेसे पुराने पुण्य नष्ट होते हैं और आदत खराब होती है, जिससे आगे फिर सुख भोगनेकी इच्छा होती है। सुख भोगनेकी इच्छा ही पापोंकी जड़ है। अर्जुनने पूछा कि महाराज, यह मनुष्य पाप करना नहीं चाहता, फिर भी इसको जबर्दस्ती पापमें लगानेवाला कौन है? (गीता ३। ३६)। भगवान्‌ने उत्तर दिया कि सुखभोग और संग्रहकी इच्छा ही पापोंका कारण है। ज्यों-ज्यों मनुष्य अधिक सुख भोगेगा, त्यों-ही-त्यों उसके भीतर भोगोंकी इच्छा बढ़ेगी। वह इच्छा ही आगे उससे पाप करायेगी। पुण्योंका फल— सुखभोगनेसे पुराने पुण्य नष्ट होते हैं और सुखभोगकी

इच्छा पैदा होनेसे पापोंका बीज बोया जाता है, जिससे वह पापी बनता है। इसलिये सुखभोगमें लाभ नहीं है। परंतु दु:ख-भोगमें बड़ा भारी लाभ है—एक तो पुराने पाप नष्ट होते हैं और एक भोगोंसे उपरति होती है कि भोगोंके लिये हमने अमुक-अमुक काम किये, इसलिये दु:ख भोगना पड़ा। अत: अब ऐसा पाप नहीं करेंगे—यह भाव होनेसे वह शुद्ध हो जाता है।

यह बात देखी हुई है कि कोई आदमी बहुत ज्यादा बीमार हो जाता है तो बीमारीसे उठनेपर उसका अन्त:करण शुद्ध हो जाता है। इसकी पहचान यह है कि उसके सामने कोई भगवत्सम्बन्धी बात रखें, भक्तोंका चरित्र रखें तो उसे सुनकर गद्गद हो जाता है, आँसू आने लगते हैं। उसको भगवान्‌की बात बड़ी प्यारी लगती है। कारण क्या है? बीमारीका कष्ट भोगनेसे अन्त:करण शुद्ध, निर्मल हो जाता है। शुद्ध अन्त:करणमें भगवान्‌का प्रेम पैदा होता है! इसी तरहसे आपलोग भी कैद भोगनेसे शुद्ध हो जायँगे। यहाँ रहते हुए अपना भाव, अपनी नीयत अच्छी रखें। इसका नतीजा आपके लिये बहुत उत्तम होगा। जो लोग सुख भोगते हैं और स्वतन्त्रतासे घूमते हैं, उनकी अपेक्षा आप बड़े भाग्यशाली हैं।

हमारे छ: दर्शन-शास्त्र हैं। उनमेंसे एक शास्त्र है—पातंजलयोगदर्शन। उसमें बताया है कि **'हेयं दु:खमनागतम्'** (२।१६)—जो दु:ख आया नहीं है, पर आनेकी सम्भावना है, वह दु:ख त्याज्य है। अर्थात् उस दु:खसे हम बच सकते हैं! जो दु:ख भोग चुके, वह तो भोग ही चुके, उसका क्या किया जाय? अभी जो दु:ख भोग रहे हैं, वह भोगनेसे नष्ट हो जायगा। अब आगे आनेवाले दु:खसे बचना चाहिये। उससे बचनेके लिये ही यह मानव-शरीर मिला है। इस मानव-शरीरमें अगर हम सावधान रहें, ठीक तरहसे आचरण करें और मर्यादाके अनुसार चलें तो आगे दु:ख नहीं होगा। आनेवाले दु:खसे बचनेके

लिये आपका यह स्थान बहुत बढ़िया है। अब आपके लिये सावधानीकी विशेष आवश्यकता है। जो बाहर गृहस्थमें रहते हैं और अपनेको स्वतन्त्र मानते हैं, उनमें भी सावधानीकी पूरी आवश्यकता है। सावधानीके बिना प्रमाद, आलस्य आदि तमोगुणी वृत्तियाँ मिटेंगी नहीं। हिंसा, प्रमाद, आलस्य, निरर्थक समय बर्बाद करना बहुत खराब चीज है। इसलिये आपलोगोंके लिये बहुत उचित बात यह है कि सब-का-सब समय अच्छे काममें लगाये रखें।

हरेक आदमीके लिये, वह साधु हो चाहे गृहस्थ हो, भाई हो चाहे बहन हो, पढ़ा-लिखा हो चाहे अपढ़ हो, मैं चार बातें कहा करता हूँ। उन बातोंको काममें लायें तो बहुत लाभ होगा, जीवन शुद्ध बन जायगा। वे चार बातें इस प्रकार हैं—

(१) सबसे पहली बात है समयकी। हमारे पास जितना समय है, उस समयको अच्छे-से-अच्छे काममें, उत्तम-से-उत्तम काममें लगाये। समयको बर्बाद न करे। ताश, खेल, चौपड़, सिनेमा, नाटक, खेलकूद (हाकी, क्रिकेट आदि खेलने)-में जो समय जाता है, वह बर्बाद होता है। न तो उससे परमात्मा मिलते हैं और न संसारका कोई लाभ होता है। हाँ, कई खेल ऐसे हैं, जिनसे शारीरिक व्यायाम होता है, स्वास्थ भी ठीक होता है; परंतु प्राय: निरर्थक समय जाता है। सिनेमा देखनेसे आँखें भी खराब होती हैं, धन भी नष्ट होता है, समय भी बर्बाद होता है और चरित्र भी खराब होता है। खेल-तमाशोंमें उम्र बर्बाद हो जाती है।

हमें जो समय मिला है, वह सीमित है, असीम नहीं है। जैसे घड़ीमें जितनी चाबी भरी हुई होती है, उतनी देर ही वह चलती है। चाबी समाप्त होते ही घड़ी बंद हो जाती है। ऐसे ही हमारी श्वासरूपी घड़ी चलती है। श्वास खत्म होते ही मरना पड़ता है। फिर कोई जी नहीं सकता। किसी बल, अधिकार, योग्यतासे जी

जायँ या विद्वान् होनेसे जी जायँ—यह हाथकी बात नहीं। वे श्वास अगर निरर्थक कामोंमें खर्च होते हैं, पाप करनेमें और दुर्व्यसनोंका सेवन करनेमें खर्च होते हैं तो यह महान् मूढ़ता है!

भगवान्‌का चिन्तन किये बिना जो समय जाता है, वह सब निरर्थक होता है। अतः हर समय सावधान रहना चाहिये कि हमारा समय निरर्थक न चला जाय। यहाँ जितना काम करना होता है जितनी ड्यूटी बजानी होती है उतना काम बड़े उत्साहसे करो और छुट्टी मिलते ही भगवान्‌के नामका जप करो, कीर्तन करो, गीता आदि पुस्तकें पढ़ो।

(२) दूसरी बात आपके लिये बहुत सुगम है; वह है—अपना जीवन सादगीसे बितायें, अपना व्यक्तिगत खर्चा कम-से-कम करें। साधारण भोजन करना, साधारण कपड़ा पहनना और साधारण मकानमें रहना—ऐसे शरीर-निर्वाह करनेकी आदत बन जाय। ऐसी आदत बन जायगी तो समयपर आप बढ़िया भोजन भी कर सकते हो, बढ़िया कपड़ा भी पहन सकते हो, बढ़िया मकानमें भी रह सकते हो और समयपर साधारण-से-साधारण भोजन, कपड़ा और मकानमें भी निर्वाह कर सकते हो। आपको स्वतः ऐसा अवसर मिला हुआ है, जिसमें आप अपना व्यक्तिगत खर्चा कम करके सादगीसे अपना जीवन बितानेका अभ्यास कर सकते हो।

यहाँसे बाहर जानेपर भी आप ऐश-आरामका जीवन न बितायें। जीवनमें सादगी रखें। ऐसा स्वभाव बननेसे आप चाहें जहाँ खूब आरामसे रह सकते हैं। जितने अच्छे-अच्छे संत-महात्मा हुए हैं, उन्होंने बिलकुल साधारण कपड़ोंमें, साधारण बिछौनोंमें, साधारण मकानोंमें रहते हुए और साधारण भोजन करते हुए अपना जीवन बिताया है। आपमेंसे जिनके पास पैसे हों, वे दानमें, पुण्यमें, कुटुम्बियोंके लिये, अरक्षितोंके लिये, अपाहिजोंके लिये, दीन-दुःखियोंके लिये खर्च करें। अपना व्यक्तिगत खर्चा कम करें।

(३) तीसरी बात यह है कि आप जो काम करें, उस काममें कारीगरी, चतुराई, होशियारी-बुद्धिमानी बढ़ाते रहें। यह विद्या आप यहाँ सीख लोगे तो यह सदा आपके पास रहेगी। ऐसा आया है कि अगर ब्रह्माजी अपने वाहन हंसपर क्रोध करके उसे अपने यहाँसे निकाल दें, तो बेशक निकाल दें, परंतु 'दूध-दूध पी लेना और जल छोड़ देना'—यह विद्या उससे ब्रह्माजी भी नहीं छीन सकते। वह जहाँ भी जायगा, यह विद्या तो उसके पास ही रहेगी। अतः हरेक काम करनेमें कुशलताको, चतुराईको, समझदारीको, विद्याको बढ़ाते चले जायँ।

(४) चौथी बात है—पराया हक न लेना। चोरी-डकैती आदि करना तो बहुत दूर रहा, दूसरोंका हक हमारे पास न आये—इस विषयमें खूब सावधान रहना है। अपनी खरी कमाईका अन्न खाओगे तो अन्तःकरण निर्मल होगा और अगर चोरीका, ठगी-धोखेबाजीका, अन्यायका अन्न खाओगे तो अन्तःकरण महान् अशुद्ध हो जायगा।

आजकल टैक्स बहुत बढ़ जानेसे लोग व्यापार आदिमें चोरी-छिपाव करते हैं। जैसे-जैसे वकील सिखाता है, वैसा-वैसा करके वे धन बचानेकी चेष्टा करते हैं। वे विचार ही नहीं करते कि इस प्रकार धन बचानेसे अन्तःकरण कितना मैला हो जायगा ! एक संत कहा करते थे कि शुद्ध कमाईके धनसे बहुत पवित्रता आती है। उनके पास एक राजा आया करते थे। एक बार राजाने उनसे पूछा कि 'महाराज, आपके यहाँ बहुत-से लोग आया करते हैं और आप भी कई लोगोंके घरोंमें भिक्षाके लिये जाया करते हैं। ऐसा कोई घर आपकी दृष्टिमें है, जिसका अन्न शुद्ध कमाईका हो? अगर ऐसा घर आपको दीखता है तो बतायें।' सन्तने कहा कि 'अमुक स्थानपर एक बूढ़ी माई रहती है। उसके घरका अन्न शुद्ध है। वह ऊनको कातकर उससे अपनी जीविका चलाती है। उसके पास धन नहीं

है, साधारण घास-फूसकी कुटिया है; परंतु वह पराया हक नहीं लेती, इस कारण उसका अन्न शुद्ध है।' ऐसा सुनकर राजाके मनमें आया कि उसके घरकी रोटी मिल जाय तो बड़ा अच्छा है! राजा स्वयं एक भिखारी बनकर उसके घर पहुँचा और बोला—'माताजी ! कुछ भिक्षा मिल जाय।' वह बूढ़ी माई भीतरसे रोटी लायी और बोली—'बेटा! यह रोटी ले लो।' तब राजाने पूछा—'माताजी, एक बात बताओ कि यह रोटी शुद्ध है न? इसमें पराया हक तो नहीं है?' तो वह बोली—'देख बेटा, बात यह है कि यह पूरी शुद्ध नहीं है, इसमें थोड़ा पराया हक आ गया है ! एक दिन रातमें बारात जा रही थी। बारातमें जो गैस-बत्तियाँ थीं, उनके प्रकाशमें मैंने ऊन ठीक की थी—इतना इसमें पराया हक आ गया है। इसके सिवाय मेरी कमाईमें कोई कसर नहीं है।' राजाने बड़ा आश्चर्य किया कि इतनी-सी कमीका भी इतना ख्याल है ! दूसरेके उस प्रकाशमें हमारा क्या अधिकार है कि उसमें हम अपनी ऊन ठीक करें?

इस तरह ये चार बातें हुईं—पहली, समय बर्बाद न करना, उसको उत्तम-से-उत्तम काममें लगाना; दूसरी, जो काम करें, उसमें अपनी जानकारी-होशियारी बढ़ाते रहना; तीसरी, अपने शरीरके निर्वाहके लिये थोड़े खर्चेकी आदत बना लेना और चौथी, पराया हक न लेना। ये चार बातें जिसमें होती हैं, उसको लोग बहुत चाहते हैं। अगर वह नौकरी करना चाहेगा, तो उसको नौकरी जरूर मिल जायगी। ये जो बड़े-बड़े व्यापार करनेवाले सेठ होते हैं, वे प्रायः झूठ-कपट करते हैं, सरकारको धोखा देते हैं, बही भी दूसरी बना देते हैं और वक्तपर विश्वासघात भी कर लेते हैं; परंतु वे भी यह नहीं चाहते कि हमारा मुनीम हमारे साथ झूठ-कपट करे, हमारेको धोखा दे, हमारे साथ विश्वासघात करे। वे चाहते हैं कि हमें ईमानदार अच्छा नौकर मिले। बेईमान आदमी भी ईमानदार नौकर चाहते हैं और

ईमानदार आदमी भी ईमानदार नौकर चाहते हैं। काम करनेवाला सच्चा और ईमानदार आदमी मिले—इसकी भूख सबको रहती है।

एक विधवा बहन मिली। उसके ससुरालवालोंने सब रुपये-गहने ले लिये, उसको दिये नहीं। वह कहती थी कि 'मेरा खर्चा ही क्या है, दो हाथके बीचमें एक पेट है! लोग अपने पूरे कुटुम्बका पालन करते हैं, मेरा तो एक पेट है; न लड़का, न लड़की। एक मैं हूँ और दो हाथ हैं मेरे पास। मुझे क्या कमी है?' जो कम खर्चा करता है, थोड़े ही खर्चेमें अपना काम चलाता है, उसके मनमें बड़ा उत्साह रहता है। उस उत्साहसे वह कमाकर खाता है, तो उसका चित्त खूब प्रसन्न रहता है। परंतु पराया हक लेनेसे चित्त शुद्ध नहीं होता। दूसरोंका हक लेनेवाला बाहरसे चाहे धनी बन जाय, चाहे खा-पीकर पुष्ट हो जाय, पर वह निर्भय नहीं हो सकता। जिसने किसीका कोई हक लिया ही नहीं, उसको भय किस बातका? वह तो निर्भय, निःशंक रहता है। उसको कभी कष्ट नहीं पाना पड़ता। इस तरह आप भी अपना जीवन निर्मल बनायें। इन चारों बातोंको काममें लायें। इससे आपका अन्तःकरण निर्मल होगा। इसके सिवाय जिनमें आपकी श्रद्धा है, उन संतोंकी पुस्तकें पढ़ें और उनके अनुसार अपना जीवन बनायें।

☯☯☯

१२. गोहत्या—एक अभिशाप

बड़े दुःखकी बात है कि हमारे देशमें बड़े पैमानेपर गोहत्या हो रही है। अभी दस-बारह वर्षोंमें तो पहलेसे करीब-करीब दुगुनी हत्या होने लग गयी है। केरल और कलकत्तामें तो बहुत ज्यादा मात्रामें गोहत्या होती है। केरलके मुख्यमन्त्रीने कहा था कि बारह महीनोंमें हमारे यहाँ चौदह लाख गायें मारी जाती हैं! हम अपने यहाँकी गायें नहीं मारते; जो गायें दूसरे प्रान्तोंसे लायी जाती हैं, वे यहाँ मारी जाती हैं। बम्बईके देवनार कत्लखानेमें बैल काटे जाते हैं। कानूनमें तो बूढ़े बैलोंको ही काटनेकी बात है, पर वहाँ जवान बैल भी काटे जाते हैं—यह हम लोग देखकर आये हैं! इससे धर्मकी हानि तो है ही, साथ-साथ देशकी भी बड़ी भारी हानि है।

अन्न और वस्त्र—ये दो चीजें खेतीसे होती हैं। जहाँ अभी बैलोंसे खेती होती है, वहाँ तो ठीक है; परंतु जहाँ यन्त्रोंके द्वारा खेती की जाती है, उसके विषयमें वैज्ञानिकोंका कहना है कि मात्र भूमण्डलमें जितना कोयला, मिट्टीके तेल, पेट्रोल, डीजल आदि हैं, वह सब तीस वर्षोंके भीतर-भीतर खत्म हो जायगा! तब ये यन्त्र कुछ काम नहीं करेंगे। अभी तो यन्त्रोंके मोहमें आकर बैलोंकी उपेक्षा कर रहे हैं, उनका नाश कर रहे हैं, पर जब ये यन्त्र काम नहीं करेंगे और बैल भी नहीं रहेंगे, तब क्या दशा होगी! खेती कैसे होगी? बिना खेतीके रोटी और कपड़ा कैसे मिलेगा? इनके बिना जीवन-निर्वाह कैसे होगा? राजस्थानमें तो कई जगह बैलोंके द्वारा ही कुओंसे पानी निकालते हैं। बैल खत्म हो जानेपर जल कैसे मिलेगा? यह बड़ी भारी समस्या है; परंतु भाई लोग अभी इस तरफ ध्यान नहीं दे रहे हैं। कितना अनर्थ होगा—इस तरफ ख्याल नहीं है।

बड़े-बूढ़े बालकोंसे कहते हैं कि पढ़ाई करो, पर खेलमें बालकोंका जैसा मन लगता है, वैसा पढ़ाईमें नहीं लगता। इसी तरहसे अभी आप खेलमें लगे हुए हो, पढ़ाईमें नहीं। अभी अपने भविष्यका अध्ययन नहीं कर रहे हो, यह बड़ी भारी हानि है। आगे इतनी बड़ी हानि होगी, जिसको सँभालना मुश्किल हो जायगा ! बम्बईके देवनार कत्लखानेमें हमने देखा कि झुण्ड-के-झुण्ड बैल बहुत दूरतक खड़े हैं। वहाँ थोड़े-से लोग सत्याग्रह कर रहे हैं, धरना देकर बैठे हैं कि हम बैलोंको काटने नहीं देंगे। उनको पुलिसके आदमी उठाकर मोटरोंसे और जगह भेज देते हैं। बैलोंको अन्दर ले लेते हैं और कत्ल कर देते हैं। अब इस तरह सत्याग्रह करनेवाले भाई लोग भी तैयार नहीं होते हैं, नींदमें सोये हुएकी तरह सोये हुए हैं! छोटी लड़की विधवा हो जाती है तो माँ चिन्ता करती है। कारण कि माँ उसके भविष्यको देखती है, जिसका पता अभी उस लड़कीको नहीं है। इसी तरहकी दशा आज देशकी हो रही है। यह बड़ी भारी हानिकी बात है। परंतु पैसे कमाने और संग्रह करनेके लोभसे अंधे हुए लोग बड़े जोरोंसे गायोंको मारनेमें लग रहे हैं। पता नहीं कि इतने रुपयोंका क्या करेंगे? पर उनको छोड़कर मरेंगे—यह हमें, आपको, सबको पता है। दस-बीस लाख, करोड़, दो करोड़ कम छोड़कर मर जाओ तो क्या फर्क पड़ता है, और ज्यादा छोड़कर मर जाओ तो क्या फर्क पड़ता है? **'सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति'**—आँख बन्द होनेपर कुछ भी नहीं है। परंतु आज इस तरफ ख्याल नहीं कर रहे हैं, चेत नहीं रहे हैं, होशमें नहीं आ रहे हैं कि आगे देशकी क्या दशा होगी? सरकार भी सोचती नहीं है! बस, किसी तरहसे रुपया मिल जाय। धनके लोभके कारण आज मनुष्य कितना अंधा हो रहा है—इसका कोई ठिकाना नहीं है!

मेरे विचारमें तो जैसे भगवान्‌का आश्रय कल्याण करनेवाला है,

ऐसे ही रुपयोंका आश्रय नरकोंमें और चौरासी लाख योनियोंमें ले जानेवाला है। रुपयोंका आश्रय, रुपयोंका भरोसा, रुपयोंका लोभ, रुपयोंकी आसक्ति, रुपयोंकी प्रियता ही पतन करनेवाली है, रुपये नहीं। कोई ऐसा दोष नहीं, कोई ऐसा पाप नहीं, कोई ऐसा दुःख नहीं, कोई ऐसी जलन नहीं, कोई ऐसा संताप नहीं, जो रुपयोंके लोभसे पैदा न होता हो। जितने दुःख हैं, वे सब-के-सब रुपयोंके लोभमें ही हैं। अगर लोभका त्याग करके धनको अच्छे कार्यमें लगाया जाय तो आपका धन सफल हो जाय, जीवन सफल हो जाय और दुनिया भी आफतसे बच जाय। एक दिन यह सब धन छूट जायगा, पर उससे कल्याण नहीं होगा। अगर छूटनेसे ही कल्याण होता हो तो सभी मरनेवालोंका कल्याण होना चाहिये; क्योंकि उनका शरीर, धन, सम्पत्ति, वैभव, कुटुम्बी आदि सब छूट जाते हैं। परंतु इससे मुक्ति नहीं होती। मुक्ति भीतरसे त्याग करनेपर होती है। लोभ है भीतर और रुपये हैं बाहर। रुपये दोषी नहीं हैं, रुपयोंका जो लोभ है, जो प्रियता है, लगन है कि संख्या बढ़ती ही चली जाय—यह वृत्ति ही महान् अनर्थ करनेवाली है। इसलिये सज्जनो! आप सावधान हो जाओ तो बड़ी अच्छी बात है। तीस वर्षोंके भीतर-भीतर हम बड़े-बूढ़े तो शायद ही रहें, पर आगे आनेवाली पीढ़ीके लिये आपने क्या सोचा है? उनकी क्या दशा होगी? प्रत्यक्ष सोचनेकी बात है। परंतु मनुष्य दीर्घ दृष्टिसे सोचता ही नहीं! सरकारकी कुर्सी भी कितने दिन रहेगी? पर अनर्थ कितना भारी हो जायेगा—इसकी तरफ ख्याल ही नहीं करते। पर किसको समझायें? किसको कहें?

कौन सुनै कासौं कहूँ, सुने तो समुझै नाहिं।
कहना सुनना समझना, मन ही का मन माहिं॥

इसलिये भाइयों, चेत करो। होशमें आओ और स्वयं विचार करो कि क्या दशा होगी देशकी? बहुत-सी सम्पत्ति तो नष्ट हो गयी है। अभी अगर बचा लो तो कुछ बच सकता है।

केवल रुपयोंके लोभके कारण चमड़ेका, मांसका, गायोंका, बैलोंका व्यापार करते हैं; क्योंकि इसमें रुपये ज्यादा पैदा होते हैं। मांस, हड्डी, खून, जीभ, आँतें, सींग, खुर, कलेजा, चमड़ा आदि अलग-अलग कर दिये जायँ तो बहुत दाम बँटते हैं। कसाईखानेके पास आते ही गायके चार हजार रुपये हो जाते हैं। केवल रुपयोंके लोभसे ही गोहत्या हो रही है।

नरकोंके तीन दरवाजे बताये गये हैं—काम, क्रोध और लोभ। इनमें भी महान् नरकोंका दरवाजा है—भोग और संग्रहका लोभ। इसलिये आप लोगोंसे प्रार्थना है कि थोड़ा जाग्रत् हो जाओ। क्या करें? एक तो चमड़ा काममें न लायें। एक बात और आयी मनमें कि जितने घरके सदस्य हैं, वे रोजाना एक-एक मुट्ठी चून (आटा) गायोंकी रक्षाके लिये निकालें और उनका संग्रह करके गोशाला आदिमें दे दें। यह बात भी मैंने अपनी प्रकृतिसे विपरीत कही है। काममें लायें तो बहुत अच्छा और नहीं लायें तो मर्जी आपकी। ऐसी बहुत-सी बातें हैं, आप लोग ज्यादा सोच सकते हैं।

१३. सत्संगका मूल्य समझें

सत्संग करनेवाले भाई-बहनोंकी प्रायः यह शिकायत रहती है कि जो हम सुनते हैं, वह याद नहीं रहता। पल्ला-झाड़ सत्संग होता है; उठ गये और पल्ला झाड़कर चल देते हैं। अतः इससे कोई फायदा नहीं होता। सत्संगकी बातें काममें आती नहीं, याद रहती नहीं। इस विषयमें मैं जो कहता हूँ, उसे आप लोग ध्यान देकर सुनें।

शुरू-शुरूमें जब हमने पढ़ाई की, तब पाँच-छः सालके बाद अपने परिचितोंके पास गये। वे कहने लगे कि इतने साल पढ़े हो, कुछ सुनाओ। पर हम नहीं सुना सके। सुनायें भी तो क्या सुनायें? '**टिड्ढाणञ्द्वयसज्घ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः**'—ऐसा पाठ सुनायें तो कौन समझे? तो हमें फेल कर दिया कि इतने वर्षोंसे पढ़ता है, पर कुछ नहीं सुनाया। कारण कि इस बातको तो पढ़ा हुआ आदमी ही जान सकता है, दूसरे आदमी नहीं जान सकते। इसी तरह परमार्थिक बातोंको सुननेसे जो असर पड़ता है, उसको परमार्थिक विषयके जानकार ही जान सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते। सत्संग सुननेसे लाभ हुए बिना रहता ही नहीं। कितना ही पल्ला झाड़ दें, तो भी आपकी सुनी हुई बातें जायँगी नहीं। आप प्रेमसे सुनते हो, आदरपूर्वक सुनते हो, बातें आपको अच्छी लगती हैं, हृदयमें जँचती हैं, वे अभी काममें भले ही न आयें, पर वे जायँगी नहीं। जैसे पाँच, सात, दस वर्ष पढ़े, तो भी व्याख्यान नहीं दे सके। व्याकरणमें प्रथमा पास हो गये, मध्यमा पास हो गये, पर व्याख्यान देनेको कहे तो आता ही नहीं। अब हमने व्याकरण पढ़ा है, न्याय पढ़ा है—इसकी बात उनके सामने क्या सुनायें? एक पंडितजी थे। वे राजाको कथा सुनाया करते थे। पंडितजीने अपने लड़केको पढ़नेके लिये काशी भेजा। काशीमें आठ-दस वर्ष पढ़ाई करनेके बाद वह वापस आया तो राजाने पंडितजीसे कहा कि आपका

लड़का इतना पढ़कर आया है तो कुछ सुनाये। वह लड़का व्याकरण और न्याय खूब पढ़ा था। उसको सुनानेके लिये कहा गया तो उसने एक कनस्तरमें बहुत-से कंकड़ डालकर उसको जोरसे हिलाया और बोला कि बस, इसके सुनानेमें और मेरे सुनानेमें कोई फरक नहीं है। चाहे यह सुन लो, चाहे मेरी बात सुन लो। अब पढ़ाईकी बातें सुनायें तो उनको कौन समझेगा। इसलिये लिखा है—

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
न हि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्॥

अर्थात् विद्वान् ही विद्वान्के परिश्रमको जान सकता है, उसकी विद्याकी परीक्षा कर सकता है, मूर्ख नहीं। जो बन्ध्या है, वह स्त्री प्रसवकी पीड़ाको कैसे जान सकती है? ऐसे ही जिन लोगोंने सत्संग नहीं किया है, जिनमें तीव्र जिज्ञासा जाग्रत् नहीं हुई है, वे कैसे जान सकते हैं कि सत्संगसे क्या लाभ होता है? क्योंकि इस विषयमें उनका प्रवेश ही नहीं है। बहुत-सी ऐसी बातें हैं, जिनकी तरफ ख्याल नहीं जाता।

व्यापार करनेवाला जैसे व्यापारके मर्मको जानता है, वैसे व्यापारकी बातें सुनकर सीखनेवाला नहीं जान सकता। एक बार किसीने मेरेसे व्यापारकी बात पूछी और मैंने उसका उत्तर दे दिया। फिर वही बात उसने गोयन्दकाजीसे पूछी और गोयन्दकाजीने उसका उत्तर दिया। उन दोनोंको मैंने देखा। गोयन्दकाजीने जितनी सुगमतासे व्यापारकी बात बतायी, उतनी सुगमतासे मेरे द्वारा नहीं कही गयी। व्यापारके विषयमें मैंने भी सोचा है, समझा है और बहुत बातें मैं जानता हूँ। अब तो व्यापारकी बातोंका यहाँतक अनुभव हुआ है कि एक व्यापारीने मेरेसे कहा कि मैं तो व्यापार आपसे ही सीखा हूँ। व्यापारकी बातें वे मेरेसे पूछते, सीखते और फिर उसके अनुसार व्यापार करते। वे व्यापारमें अच्छे होशियार और तेज हो गये। वे आजकल हैं, उनकी बात कहता हूँ, पुरानी बात नहीं है। व्यापारकी बातें भी मैंने

सुन-सुनकर सीखी है, और गृहस्थकी बातें भी मैंने सुन-सुनकर सीखी हैं।

जो संसारमें रचा-पचा न रहकर उससे ऊँचा उठता है, वह संसारको जितना जानता है, उतना संसारमें रचा-पचा रहनेवाला नहीं जानता। मनुष्य संसारसे अलग होकर ही संसारकी बातोंको विशेषतासे जान सकता है। ऐसे ही वह परमात्माके साथ एक होकर ही परमात्मतत्त्वकी बातोंको विशेषतासे जान सकता है। परमात्मासे अलग रहते हुए कितनी ही परमात्मतत्त्वकी बातें सुन ले, कितने ही शास्त्र पढ़ ले, कितना ही अध्ययन कर ले, पर वह परमात्माको नहीं जान सकता। तात्पर्य यह है कि संसारके तत्त्वको वही जान सकता है, जो संसारसे अलग हो गया है और परमात्मतत्त्वको वही जान सकता है, जो परमात्माके साथ एक हो गया है। जब संसारसे अलग हुए बिना आप संसारके तत्त्वको भी नहीं जान सकते, फिर परमात्माके तत्त्वको जान ही कैसे सकते हैं?

आप कहते हैं कि हमने सत्संगकी बात तो सुन ली, पर वह हमारे काम नहीं आती! परंतु वास्तवमें सच्ची बात कभी निरर्थक जाती ही नहीं; क्योंकि सत् वस्तुका कभी अभाव नहीं होता— '**नाभावो विद्यते सतः**' (गीता २। १६)। इसकी क्या पहचान है? पहचान यह है कि सत्संगका समय होनेपर आप घरपर रह नहीं सकते, सत्संगकी तरफ खिंचते हैं! यह कौन खींचता है? आपके भीतर जो संस्कार जमा हैं, वे ही आपको सत्संगकी तरफ खींचते हैं। सत्संगमें जो आपकी रुचि है, वह रुचि कहती है कि आपके भीतर सत्संगके संस्कार हैं! आप उनको जान नहीं सकते, पर लाभ होता है, होता है, होता है।

अब आप दूसरी बात सुनें। सत्संगके समान उग्र साधन, उग्र तपस्या, उग्र पुण्य कोई है ही नहीं। हजारों वर्षोंकी तपस्यासे जो लाभ नहीं होता, वह लाभ सत्संग सुननेसे तत्काल हो जाता है! कई लोगोंने खुद मेरेसे कहा है कि सत्संग सुननेसे हमें बहुत लाभ है, हमारी

वृत्तियोंमें बहुत फर्क पड़ा है। सत्संग करें और फर्क न पड़े—ऐसा हो ही नहीं सकता। कोरी कथा ही न सुनें, प्रत्युत सत्संगकी बातोंको गहरा उतरकर समझें तो एकदम फर्क पड़ता है।

किसीने 'क'—यह अक्षर सीख लिया तो मानो उसने आचार्यकी पढ़ाईका एक अंश पढ़ लिया ! उसने क, ख, ग, घ, ङ—ये पाँच अक्षर पढ़ लिये। लिखाओ तो वह पाँचों अक्षर लिख देगा, पर 'घ'—ऐसा लिखकर पूछो कि यह क्या है, तो वह जल्दी नहीं बता सकेगा। वह 'क, ख, ग और घ' हाँ-हाँ, यह 'घ' है—इस प्रकार सोचकर बता देगा। जल्दी नहीं बता पानेसे ऐसा नहीं कह सकते कि उसकी पढ़ाई नहीं हुई। यह आचार्यकी पढ़ाईका ही एक चिह्न है। ऐसे ही सत्संगकी बात समयपर काम नहीं आती—यह बात आपके भीतर पैदा होती है, तो यह आपके सत्संगका ही चिह्न है। जो सत्संग नहीं करते, उनके भीतर यह बात पैदा होती है क्या?

तीसरी बात, भूख लगनेपर भोजन किया जाय तो भोजनका ठीक पाचन होता है, जिससे शक्ति आती है। बिना भूखके भोजन किया जाय तो उसका ठीक पाचन न होनेसे शक्ति नहीं आती। ऐसे ही आपको सत्संगकी भूख लगती और आप उसको ढूँढ़ते, इधर-उधर जाते और फिर सत्संग मिलता, तो सत्संगकी बात आपपर असर करती। आप तो रुपये कमा रहे हो, उनका आवाहन कर रहे हो, पंखा चल रहा है, आराम कर रहे हो, कूलर चल रहा है कि ठंडी रहे, गर्मी न हो जाय—ऐसा करके सत्संग सुनते हो, तो भाई! अभी भूख लगी नहीं है। सुननेकी इच्छा तो है नहीं, भाव यह रहता है कि चलो घूम आयें, यह भी एक तमाशा है! अगर भूख लगती और जगह-जगह भटकते, तब पता लगता। भूख लगनेपर ही वह जँचता है, रुचता है और पचता है। भूख न हो तो वह जँचता नहीं, रुचता नहीं और पचता नहीं।

स्वयं ज्योतिजी महाराज बीकानेरमें नरसिंग सागरपर ठहरे हुए थे। एक भाईने कहा—महाराज, आप हमारी बगीचीमें आ जायँ तो अच्छा

है। नरसिंग सागर हमारे लिये दूर पड़ता है, बगीची नजदीक पड़ती है। बाबाजी बोले—तो तेरे घरपर ही आ जाऊँ? अब भाव यह है कि बाबाजी हमारे नजदीक आ जायँ तो हमें सुविधा रहे, यह नहीं कि हम बाबाजीके पास चले जायँ और लाभ ले लें। सत्संगका समय कौन-सा रखा जाता है? जब काम-धंधेका समय नहीं हो, वह समय सत्संगका रखा जाता है! फालतू समय सत्संग, भजन, ध्यानके लिये रखा जाता है और कहते हैं कि असर नहीं हुआ! असली समय तो रुपया कमानेमें लगाते हैं और फालतू समय सत्संगमें लगाते हैं तथा लाभ असली चाहते हैं!

मालिन बेर बेचती है तो बालक उसके पास धान ले जाता है और बदलेमें बेर ले लेता है। बालक कहता है कि और बेर दे दे, तो वह एक-दो बेर और दे देती है। जब वह और बेर माँगता है, तब वह कहती है कि 'कीणों तो सँभाल' अर्थात् तू कितना धान लाया है, उसको तो देख। मेंरेसे ही कहता है कि दे दे, पर तूने खर्च कितना किया है? ऐसे ही आपसे पूछा जाय कि सत्संगके लिये आपने कौन-सा समय खर्च किया है? नींदका समय खर्च किया है कि व्यापारका समय खर्च किया है? या असली कामका समय खर्च किया है? पूछा जाय कि सत्संगमें आप आये नहीं? तो कहेंगे कि 'आते तो थे, पर एक आदमीसे बात करनेमें लग गये तो भूल गये; फिर देखा तो ओहो, समय तो हो गया।' पूछा जाय कि कल क्यों नहीं आये? तो कहेंगे कि महाराज, मुकदमेकी बात आ गयी, उधर चले गये, इसलिये नहीं आ सके।' फिर पूछें कि परसों आप क्यों नहीं आये? तो कहेंगे कि महाराज, क्या करें, बात ऐसी थी कि भोजन करके पलंगके सहारे हुए तो नींद आ गयी। नींद खुली तो देखा—ओहो, सत्संगका समय तो हो गया, अब जाकर क्या करेंगे!'

घरका कोई काम न हो, बात करनेके लिये कोई आदमी न मिले; नींद भी नहीं आये—ऐसे फालतू समयमें सत्संग करना चाहते हो! पहले

आप अपना कीणा तो सँभालो, यह तो देखो कि आप कितना खर्च करते हो। फिर देखो कि लाभ होता है कि नहीं होता है। आप जितनी लगनसे यहाँ आते हो, उससे ज्यादा लाभ आपको होता है—यह एकदम पक्की बात है, सच्ची बात है। आप जितना खर्च करते हो, उसकी अपेक्षा ज्यादा लाभ होता है—इसमें मेरेको संदेह नहीं है। अगर ज्यादा खर्च करोगे तो ज्यादा लाभ होगा।

सत्संगकी बातें कुछ काम नहीं आतीं—ऐसी बात क्यों पैदा हुई? कि लोगोंने यह कहना शुरू कर दिया। सत्संग सुननेसे क्या लाभ होता है—ऐसा एकने कहा, दोने कहा, तीनने कहा, चारने कहा हल्ला हो गया! अच्छे आचरणोंवाले आठ-दस ब्राह्मण थे। उनके मनमें आ गयी कि ये लोग मदिरा पीते हैं। हम यदि पी लें तो हमें पंक्तिसे बाहर कर दें। पर हम एक बार देखें तो सही कि इसमें कितना रस है। वे सब एक जगह इकट्ठे हुए और सभी दरवाजे बन्द कर लिये, जिससे भीतर कोई नहीं आये। अब लगे पीने। थोड़ा नशा आया तो एकने कहा हल्ला मत करो; दूसरा बोला हल्ला मत करो; तीसरा बोला—देखो, हल्ला मत करो, हल्ला मत करो। 'हल्ला मत करो' में हल्ला हो गया! ऐसे ही एकने कहा सत्संगकी बात काम नहीं आती; दूसरेने कहा-हाँ सा, काम नहीं आती, तीसरेने कहा-हाँ सा, काम नहीं आती। इस प्रकार 'हाँ' में 'हाँ' मिला दी, हल्ला मचा दिया। ठंडे दिमागसे विचार नहीं करते कि सत्संगकी बातें कितनी काममें आयीं, कैसे-कैसे काममें आयीं।

सत्संगकी बातें काममें आती हैं, ऐसा हमने देखा है। जो आदमी सत्संग करनेवाले हैं, उनके बीच आपसमें खटपट मचती है और उसको मिटाने जाते हैं तो वह बहुत जल्दी मिट जाती है। परंतु जो सत्संग नहीं करते हैं, उनकी खटपटको मिटाने जाते हैं, तो वह मिटती नहीं, उलटे हमारेसे लड़ पड़ते हैं। यह बीती हुई बात है। हमने तो गाँवोंमें भटककर देखा है कि जिन गाँवोंमें सौ-दोसौ वर्षोंसे कोई सन्त नहीं

आये, सत्संग नहीं हुआ, वहाँके लोगोंके आचरण बिलकुल भूत-प्रेतोंकी तरह, पशुओंकी तरह हैं। परंतु जिन गाँवमें संत आये हैं, सत्संग हुआ है, उन गाँवोंमें दूसरे गाँवसे विलक्षणता है।

जिन प्रदेशोंमें अच्छे संत व्याख्यान देते हैं और सुननेवाले रुचिसे सुनते हैं, वहाँके आदमियोंमें दूसरोंकी अपेक्षा बहुत फर्क होता है। सत्संग सुननेसे आपमें क्या फर्क पड़ा है—इसका पता आपको तब लगेगा, जब आप दूसरोंके साथ मिलोगे और उनकी बातें सुनोगे। एक सत्संगी भाईने मेरेको बताया कि जब मैं कटनी गया, तब वहाँके लोगोंसे मिलनेपर और बातचीत करनेपर पता लगा कि उनसे तो हम बहुत अच्छे हैं! जो सत्संग नहीं करते, ऐसे आदमियोंकी बातें आप सुनो, उनका व्यवहार देखो तो आपको होश होगा कि सत्संगकी बात कितनी काममें आयी है, कितना फर्क पड़ा? कोयल भी काली होती है और कौआ भी काला होता है; परंतु जब वसन्त-ऋतु आती है, तब कोयल 'पिऊ-पिऊ' करती है और कौआ 'काँय-काँय' करता है। वाणीसे उनके भेदका पता लगता है। इसलिये गोस्वामीजीने कहा है—

मज्जन फल पेखिअ ततकाला।
काक होहिं पिक बकउ मराला॥

(मानस १।३।१)

यह साधु-समाज प्रयाग है। इसमें स्नान करनेसे तत्काल फल होता है, कौआ कोयल हो जाता और बगुला हंस हो जाता है। कौआ हंस नहीं होता, कोयल होता है अर्थात् उसका रंग नहीं बदलता, पर वाणी (व्यवहार) बदलती है। ऐसे ही बगुला हंस होता है तो उसका रंग तो वही रहता है, पर उसमें नीर-क्षीर-विवेक आ जाता है। तात्पर्य है कि सत्संगरूपी प्रयागराजमें स्नान करनेसे कौए और बगुलेका रूप तथा रंग तो वही रहता है, पर व्यवहार तथा विवेकमें फर्क पड़ जाता है। परंतु इसकी पहचान किसको होती है? **'विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्'** अर्थात् विद्वान् ही विद्वान्‌को पहचानता है। जो

अच्छे संत हैं, वे देखते ही परख लेते हैं। एक बूढ़े सन्त थे, वे अपनी बात कहते थे। जब वे वैरागी साधु हुए, तब वे जोधपुर चले गये और वहाँ मोती चौकमें श्रीगुपतरामजी महाराजके पास रहकर नाम-जप करने लगे। उनको देखते ही महाराजजी बोले कि यह सुलगा हुआ है अर्थात् इसके भीतर वैराग्यकी आग लगी हुई है ! अब इस बातको वैराग्यवान्के सिवाय दूसरा कौन पहचाने? ऐसे ही सत्संग करनेवालेको संतलोग पहचान लेते हैं। वे उसकी बात सुनकर जान लेते हैं कि इसको कोई-न-कोई सन्त मिला है। आप कहते हो कि कुछ फायदा नहीं हुआ, पल्ला-झाड़ सत्संग है, ऐसी बात है नहीं। असर हुए बिना रहेगा ही नहीं।

एक कहानी आती है। डाकुओंका एक दल था। उनमें जो बड़ा-बूढ़ा डाकू था, वह सबसे कहता था कि 'भाई, जहाँ कथा-सत्संग होता हो, वहाँ कभी मत जाना, नहीं तो तुम्हारा काम बंद हो जायगा। कहीं जा रहे हो, बीचमें कथा होती हो तो जोरसे कान दबा लेना, उसको सुनना बिलकुल नहीं।' ऐसी शिक्षा डाकुओंको मिली हुई थी। एक दिन एक डाकू कहीं जा रहा था। रास्तेमें एक जगह सत्संग-प्रवचन हो रहा था। रास्ता वही था, उधर ही जाना था। जब वह डाकू उधरसे गुजरने लगा तो उसने जोरसे अपने कान दबा लिये। चलते हुए अचानक उसके पैरमें एक काँटा लग गया। उसने एक हाथसे काँटा निकाला और फिर कान दबाकर चल पड़ा। काँटा निकालते समय उसको यह बात सुनायी दी कि देवताकी छाया नहीं होती।

एक दिन उन डाकुओंने राजाके खजानेमें डाका डाला। राजाके गुप्तचरोंने खोज की। एक गुप्तचरको उन डाकुओंपर शक हो गया। डाकूलोग देवीकी पूजा किया करते थे। वह गुप्तचर देवीका रूप बनाकर उनके मंदिरमें देवीकी प्रतिमाके पास खड़ा हो गया। जब डाकूलोग वहाँ आये तो उसने कुपित होकर डाकुओंसे कहा कि तुम लोगोंने इतना धन खा लिया, पर मेरी पूजा ही नहीं की! मैं तुम सबको

खत्म कर दूँगी। ऐसा सुनकर वे सब डाकू डर गये और बोले कि क्षमा करो, हमसे भूल हो गयी। हम जरूर पूजा करेंगे। अब वे धूप-दीप जलाकर देवीकी आरती करने लगे। उनमेंसे जिस डाकूने कथाकी यह बात सुन रखी थी कि देवताकी छाया नहीं होती, वह बोला—यह देवी नहीं है। देवीकी छाया नहीं पड़ती, पर इसकी तो छाया पड़ रही है! ऐसा सुनते ही डाकुओंने देवीका रूप बनाये हुए उस गुप्तचरको पकड़ लिया और लगे मारने। वे बोले कि चोर तो तू है, हम कैसे हैं? हमने चोरी की ही नहीं। वह गुप्तचर वहाँसे भाग गया। सत्संगकी एक बात सुननेसे ही फर्क पड़ गया।

एकने सत्संग सुना ही नहीं और एकने सत्संग सुना, तो दोनोंमें फर्क हुआ कि नहीं? सत्संग करनेवालेको माप-तौल लो तो कुछ फर्क नहीं पड़ा, पर भीतरसे बहुत फर्क पड़ा है। ठाकुरजीको भोग लगाते हैं तो प्रसाद एक तोला भी कम नहीं होता, पर उसको लेनेके लिये लखपति-करोड़पति हाथ फैला देते हैं। उनको प्रसादका कणमात्र भी दे दो तो वे प्रसन्न हो जाते हैं। यह क्या है? भगवान्‌का प्रसाद है! भगवान्‌के अर्पण किये हुए पदार्थमें एक विलक्षणता आ जाती है, जिसको हरेक नहीं देख सकता, विवेकवाला ही देख सकता है।

वैष्णवे हरिभक्तौ च प्रसादे हरिनाम्नि च।
अल्पपुण्यवतां श्रद्धा यथावन्नैव जायते॥

अर्थात् भगवान्‌के भक्तोंमें, भक्तिमें, प्रसादमें और भगवान्‌के नाममें थोड़े पुण्यवालोंकी रुचि नहीं होती, वे इनको पहचानते नहीं। जो पुण्यशाली होते हैं, उनको ही भगवान्‌के अर्पण किये हुए प्रसादमें विचित्रता दीखती है, दूसरोंको नहीं दीखती। अर्पण करनेवाला जितना ही भावपूर्वक अर्पण करता है, उतनी ही उस वस्तुकी विलक्षणता आती है। भगवान्‌के सामने रख दे तो भी अच्छा है; परंतु भावपूर्वक अर्पण करनेसे इतनी विलक्षणता आती है कि स्वादमें फर्क पड़ जाता है! भावमें बड़ी भारी शक्ति है। ऐसी बातें देखी हुई हैं और शास्त्रोंमें भी

आती हैं। कोई गृहस्थ किसी साधुको अन्न देता है तो उसका भाव जितना तेज होता है, उतनी ही उस अन्नमें विलक्षणता आ जाती है। एक जगहकी बात है, ऐसा भावपूर्वक बनाया हुआ भोजन दो-तीन दिनतक रह गया, पर वह खराब नहीं हुआ! ऐसे अन्नको खानेपर असर पड़ता है। परंतु जाननेवाला ही जाने, दूसरा क्या जाने? ***'जिसके लागी है सोई जाणे, दूजा क्या जाणे रे भाई।'*** घाव होनेपर कैसी पीड़ा होती है, यह घायल ही जानता है। एक बाबाजीसे कोई बोला—महाराज, आप भजन करते हो, तो क्या अनुभव हुआ बताओ? बाबाजी कुछ बोले नहीं। वह ज्यादा पीछे पड़ गया, तो बाबाजीने उसकी पीठपर पत्थर मारा। उसने पूछा कि पत्थर क्यों मारा? बाबाजी बोले—तो क्या हुआ? वह बोला है कि पीड़ा हो रही है। बाबाजीने कहा—पीड़ाको दिखाओ कि कैसी पीड़ा है। वह बोला—मैं कहता हूँ न बाबा, पीड़ा मुझे हो रही है, आपको क्या पता? जब पीड़ा भी नहीं दिखा सकते, तो फिर पारमार्थिक बातें कैसे दिखा देंगे?

सत्संगसे फर्क न पड़े—ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। बहुत विचित्र फर्क पड़ता है। उस विचित्रताको जानकार आदमी ही जान सकते हैं, दूसरे नहीं जान सकते। साधारण आदमी तो कहेगा कि तुम्हारेमें क्या फर्क पड़ा? हमारे-जैसे ही तुम हो। हाथ, पाँव, नाक, कान, आँख आदिमें क्या फर्क पड़ा? ठीक है, इनमें कुछ फर्क नहीं पड़ा। कौआ भी काला होता है और कोयल भी काली होती है, पर फर्क वाणीमें पड़ता है, विवेकमें पड़ता है, चित्तकी वृत्तियोंमें पड़ता है। आप विचार करें कि सत्संग करनेसे पहले हरेकके साथ बर्ताव करनेपर जैसा असर पड़ता था, वैसा असर अब पड़ता है क्या? वैसा असर पड़ भी जाय तो क्या वह उतनी देर रहता है? मैं तो समझता हूँ कि फर्क न पड़े—ऐसा हो ही नहीं सकता। यह बात अलग है कि जिनका सत्संग करते हैं, वे अनुभवी महापुरुष होने चाहिये और सुननेवाले भी जिज्ञासु होने चाहिये—

पारस केरा गुण किसा, पलट्या नहीं लोहा।
कै तो निज पारस नहीं, कै बीच रहा बिछोहा॥

पारससे लोहेका स्पर्श किया जाय तो लोहा सोना बन जाता है। अगर पारससे स्पर्श करनेपर भी लोहा सोना न बने, तो समझना चाहिये कि पारस नहीं है; कोई पत्थरका टुकड़ा है। अगर वह पारस है, तो फिर लोहा असली नहीं होगा। अगर पारस और लोहा—दोनों असली हैं, तो उन दोनोंके बीचमें कोई दूसरी वस्तु आ गयी होगी, जिससे उनका आपसमें स्पर्श नहीं हुआ। ऐसे ही असली संत हो और असली जिज्ञासु हो, तो जिज्ञासुमें फर्क पड़े बिना रह नहीं सकता। परंतु बीचमें कुछ-न-कुछ व्यवधान डाल देनेसे लाभ नहीं होता। बड़े विचित्र-विचित्र व्यवधान होते हैं, जिनका वर्णन क्या करें और कहाँतक करें! जैसे—हम भी पारमार्थिक मार्गपर चलनेवाले हैं और आप भी पारमार्थिक मार्गपर चलनेवाले हैं; परंतु हमारी दीक्षा वैष्णव-सम्प्रदायमें हुई है और आपकी दीक्षा शैव-सम्प्रदायमें हुई है। वैष्णवोंके संस्कार हैं कि शैव ठीक नहीं होते और शैवोंके संस्कार हैं कि वैष्णव ठीक नहीं होते। अब दूसरे सम्प्रदायवाले बढ़िया-से-बढ़िया बात सुनायेंगे तो भी उनकी बात नहीं सुनेंगे—यह आड़ लगा दी। ऐसे ही सगुण और निर्गुणको लेकर, साकार और निराकारको लेकर, राम और कृष्णको लेकर आड़ लगा ली। जैसे, हम 'जय श्रीकृष्ण' कहेंगे, पर 'जय श्रीराम' नहीं कहेंगे। ऐसे विचारवाले दूसरेकी बात क्या सुनेंगे और क्या समझेंगे? 'राम-राम' कहनेवालोंमें भी रत्न (श्रेष्ठ पुरुष) होते हैं। ऐसा नहीं है कि 'कृष्ण-कृष्ण' कहनेवालोंमें तो रत्न होते हैं, पर 'शिव-शिव' कहनेवालोंमें नहीं होते। परंतु सम्प्रदायको लेकर एक-दूसरेकी निंदा शुरू कर देते हैं, अब रत्नका असर कहाँ पड़े?

◉◉◉

१४. पारमार्थिक उन्नति धनके आश्रित नहीं

श्रोता—गुरुकी सेवा कैसे की जाय?

स्वामीजी—गुरु किसको कहते हैं? गुरु-गीतामें आया है—

गुकारश्चान्धकारो हि रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः॥

तात्पर्य है कि जो अन्तःकरणके अन्धकारको दूर कर दे, उसका नाम 'गुरु' है। बाहरका अन्धकार तो सूर्य दूर करता है, पर भीतरका अन्धकार गुरु दूर करता है। गुरुका संग करके, उनकी आज्ञाका पालन करके अपने भीतरका अन्धकार दूर कर लें—यही गुरुकी वास्तविक सेवा है और इसीसे गुरु प्रसन्न होते हैं। हम शरीरसे उनको सुख दें तो वह भी अच्छा है; परंतु वह गुरु-सेवा नहीं है, प्रत्युत एक शरीरकी सेवा है।

गुरु शरीर नहीं होता। शास्त्रोंमें आया है कि गुरुमें मनुष्यबुद्धि करना और मनुष्यमें गुरुबुद्धि करना पाप है, अन्याय है। कारण कि गुरु अमर होता है, जब कि मनुष्य मरनेवाला होता है। अगर गुरु भी मरनेवाला होता तो वह शिष्यको अमर कैसे बनाता? गुरुकी असली सेवा है—अमरताकी प्राप्ति कर लेना। जैसे, परीक्षा लेनेवाला आता है और विद्यार्थी उसके सवालोंका ठीक जवाब दे देता है, तो उससे विद्या पढ़ानेवाले गुरुजी प्रसन्न हो जाते हैं। ऐसे ही जब शिष्य परमात्मतत्त्वको प्राप्त कर लेता है, तब उससे पारमार्थिक मार्ग दिखानेवाले गुरुजी प्रसन्न हो जाते हैं। गुरुका प्रसन्न होना ही उनकी सेवा है। आप रोटीसे, कपड़ेसे, मकानसे, सवारीसे जिस किसी तरह भी गुरुको सुख पहुँचाते हैं—यह भी ठीक है; परंतु ये चीजें शरीरतक ही पहुँचती हैं, गुरुतक नहीं।

सन्त-महात्मा हमारेसे तभी प्रसन्न होते हैं, जब हमारा जीवन

महान् पवित्र, निर्मल हो जाये और हमारा कल्याण हो जाय। जैसे हृष्ट-पुष्ट बालकको देखकर माँ प्रसन्न हो जाती है, ऐसे ही आपमें ज्ञान बढ़ा हुआ देखकर सन्त-महात्मा प्रसन्न हो जाते हैं। आप भले ही उन्हें रोटीका टुकड़ा भी मत दो, उनकी कुछ भी सेवा मत करो; परन्तु उनकी बातोंको धारण करके वैसे ही बन जाओ तो वे बड़े प्रसन्न हो जायँगे; क्योंकि यही उनकी असली सेवा है।

जड़ चीजोंसे गुरु-तत्त्वकी सेवा नहीं होती। छोटे बच्चेको रेशमकी चमकीली टोपी पहना दी जाय तो वह बहुत राजी हो जाता है। जब वह पिताजीकी गोदमें बैठता है, तब वह उस टोपीको पिताजीके सिरपर रख देता है और समझता है कि मैंने पिताजीको बहुत बढ़िया चीज दे दी। परंतु वह टोपी पिताजीके लिये ठीक है क्या? पिताजी वह टोपी पहने हुए चलेंगे क्या? ऐसे ही जो लोग संतोंको भेंट चढ़ाते हैं, कपड़ा देते हैं, बढ़िया-बढ़िया भोजन कराते हैं, वे मानो उनको रेशमी चमकदार टोपी पहनाते हैं! यह उनका बचपना ही है। यह सन्तोंकी असली सेवा नहीं है। सन्तोंकी असली सेवा है—अपना कल्याण करना। हम अपना कल्याण कर लें तो वे प्रसन्न हो जायँगे, उनका प्रयत्न सफल हो जायगा, उनका कहना-सुनना सफल हो जायगा।

आज मनुष्योंके मनमें धनका महत्त्व बैठा हुआ है। वह हरेक जगह समझता है कि धनसे ही कल्याण होता है। अरे भाई! धन एक जड़ चीज है, इससे जड़ चीजें ही खरीदी जा सकती हैं, परमात्मा नहीं खरीदे जा सकते। अगर परमात्मा धनसे खरीदे जाते, तो हमारे-जैसोंकी क्या दशा होती? बड़ी मुश्किल हो जाती! पर ऐसी बात नहीं है।

श्रोता—धर्मका अनुष्ठान तो धनसे ही होता है?

स्वामीजी—बिलकुल गलत है। रत्तीभर भी सही नहीं, परंतु धनके लोभीको यही दीखता है; क्योंकि धनमें बुद्धि बेच दिया, अपनी

अक्लकी बिक्री कर दी। अब अक्लके बिना वे क्या समझें? अक्ल होती तो समझते। शास्त्रमें आया है—

धर्मार्थं यस्य वित्तेहा वरं तस्य निरीहता।
प्रक्षालनाद्धि पंकस्य दूरादस्पर्शनं वरम्॥

अर्थात् जो मनुष्य धर्मके लिये धनकी इच्छा करता हो, उसके लिये धनकी इच्छाका त्याग करना ही उत्तम है। कारण कि कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही उत्तम है। राजा रन्तिदेवका पुण्य बहुत बड़ा माना जाता है। उनके सामने ब्रह्मा, विष्णु, महेश—सब प्रकट हो गये। बात क्या थी? गरीबोंको दुःखी देखकर उन्होंने अपना सर्वस्व दान कर दिया था। एक बार उनको और उनके परिवारको अड़तालीस दिनतक कुछ भी खाने-पीनेको नहीं मिला। उनचासवें दिन उनको थोड़ा घी, खीर, हलवा और जल मिला। वे अन्न-जल ग्रहण करना ही चाहते थे कि एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। रन्तिदेवने उस ब्राह्मण देवताको भोजन करा दिया। ब्राह्मणके चले जानेके बाद रन्तिदेव बचा हुआ अन्न परिवारमें बाँटकर खाना ही चाहते थे कि एक शूद्र अतिथि आ गया। रन्तिदेवने बचा हुआ खाना, कुछ अन्न उसे दे दिया। इतनेमें ही कुत्तोंको साथ लेकर एक और मनुष्य वहाँ आया और बोला कि मेरे ये कुत्ते बहुत भूखे हैं, कुछ खानेको दीजिये। रन्तिदेवने बचा हुआ सारा अन्न कुत्तोंसहित उस अतिथिको दे दिया। अब केवल एक मनुष्यके पीने लायक जल बाकी बचा था। उसको आपसमें बाँटकर पीना ही चाहते थे कि एक चाण्डाल आ पहुँचा और बड़ी दीनतासे बोला कि महाराज, मैं बड़ा प्यासा हूँ, मुझे जल पिला दीजिये। रन्तिदेवने वह बचा हुआ जल भी उस चाण्डालको पिला दिया। उनकी परीक्षासे बड़े प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों उनके सामने प्रकट हो गये! अगर भगवान्‌की प्राप्ति धनसे होती तो जल पिलानेमात्रसे वे कैसे प्रकट हो जाते?

धर्मका अनुष्ठान, पारमार्थिक उन्नति धनपर बिलकुल भी अवलंबित नहीं है। जो इनको धनके आश्रित मानते हैं, वे धनके गुलाम हैं, कौड़ीके गुलाम हैं। पर वे इस बातको समझ ही नहीं सकते! छोटे बालकके सामने एक सोनेकी मुहर रखी जाय और एक बताशा रखा जाय तो बताशा ले लेगा, मुहर नहीं लेगा। आप समझेंगे कि वह भोला है, पर अपनी दृष्टिसे वह भोला नहीं है, प्रत्युत समझदार है। बताशा तो मीठा होता है, और खानेके काम आता है, पर मुहरका वह क्या करे? ऐसे ही ये लोग धन-रूपी मीठा बताशा तो ले लेते हैं, पर भगवान्‌का भजन, धर्मका अनुष्ठान, परमात्माकी प्राप्ति—इन कीमती रत्नोंको फालतू समझ लेते हैं। वे समझते हैं कि इतना बड़ा पण्डाल बनाना, बिछौना बिछाना, लाउड-स्पीकर लगाना आदि सब काम धनसे ही होते हैं। यह बिलकुल मूर्खताकी बात है; इसमें रत्तीभर भी सच्चाई नहीं है; किंतु धनका लोभी इस बातको समझ ही नहीं सकता। मेरेमें ताकत नहीं है कि मैं यह बात आपको समझा दूँ, और आप सब इकट्ठे होकर भी मेरेको यह नहीं समझा सकते कि पारमार्थिक उन्नति धनके अधीन है।

पारमार्थिक उन्नति धनके अधीन नहीं है—यह बात मेरे भीतर ठीक बैठी हुई है। इस विषयमें मैंने खूब अध्ययन किया है। जैसे रुपया कमानेके लिये कलकत्ता जाते हैं। वहाँ रुपये कमा लेते हैं तो हम अपनी यात्रा सफल मान लेते हैं। ऐसे ही कथा करते हैं और उसमें रुपये आ जाते हैं तो अपनी कथाको सफल मान लेते हैं। यह उनकी बात हुई, जो रुपयोंके गुलाम हैं। परंतु कहीं अच्छे संत-महात्मा हों और उनकी सेवामें भोजन दिया जाय, कपड़ा दिया जाय तो आदमी प्रसन्न होता है कि आज मेरा भोजन तथा कपड़ा सफल हो गया! इसलिये सज्जनो! धन देनेसे सफल होता है, लेनेसे नहीं होता। जो लेनेसे सफलता मानते हैं, वे बेचारे समझते ही नहीं! रुपया आनेसे कोई फायदा नहीं है। मर जाओगे तो क्या एक कौड़ी भी साथ चलेगी? परंतु धर्मका अनुष्ठान

किया है, भगवान्‌का भजन किया है, गुरुकी प्रसन्नता ली है तो यह सब धन यहाँ नहीं रहेगा, साथ चलेगा। हृदयसे दूसरोंको सुख पहुँचाया जाय, धर्मका अनुष्ठान किया जाय इसमें आपका जितना पैसा लग गया, वह सब सफल हो गया।

सत्संग-भजनमें रुपया लग जाय, तो बड़े भाग्यकी बात है, नहीं तो अच्छे काममें पापीका पैसा लग नहीं सकता— ***'पापी रो धन पर ले जाय, कीड़ी संचै तीतर खाय।'*** उस धनको डाकू ले जायँगे, इन्कम टैक्सवाले ले जायँगे, डॉक्टर ले जायँगे, वकील ले जायँगे। इनमें बेशक हजारों रुपये खर्च हो जायँ, पर सत्संग-भजन आदिमें वे खर्च नहीं कर सकेंगे। उनका पैसा भी खराब है और भीतरका भाव भी खराब है; अतः वे कैसे खर्च कर सकते हैं? मैं तो यह बात आपको समझानेमें अपनेको असमर्थ मानता हूँ; परंतु बात वास्तवमें ऐसी ही है।

आपकी, आपके पैसोंकी, आपकी वस्तुओंकी सफलता होती है देनेसे। खर्च करनेसे ही पैसा आपके काम आयेगा, संग्रहसे नहीं। संग्रहसे तो अभिमान ही बढ़ेगा। अभिमानके भीतर सम्पूर्ण आसुरी-सम्पत्ति, सम्पूर्ण दुर्गुण-दुराचार रहते हैं— ***'संसृत मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥'*** (मानस ७। ७४। ३)। यह अभिमान महान् नरकोंमें ले जानेवाला होगा। परंतु संग्रह करना अच्छा लगता है और खर्च करना बुरा लगता है ! अरे भाई, रुपये बढ़िया नहीं हैं, उनका सदुपयोग बढ़िया है।

श्रोता—सदुपयोग भी तो तब करें, जब पासमें रुपया हो। रुपया न हो तो सदुपयोग कैसे करें?

स्वामीजी—जिसके पास रुपये नहीं हैं, उसपर सदुपयोगकी जिम्मेवारी है ही नहीं। मालपर जकात लगती है। माल ही नहीं तो जकात किस बातकी? इन्कम ही नहीं तो टैक्स किस बातका? गरीब आदमी जितना पुण्य कर सकता है, उतना धनी आदमी कभी नहीं कर

सकता। अच्छे-अच्छे सन्त भिक्षाके लिये जाते हैं, तो अगर वे गरीब आदमीके घर पहुँच जायँ और वह संतको रोटीका एक टुकड़ा भी दे दे तो पुण्य हो जायगा। परंतु धनी आदमीके घर लाठी लिये चौकीदार बैठा रहता है और कहता है—'ओ बाबा, कहाँ जाते हो; यहाँ नहीं, आगे जाओ।' बेचारे धनी आदमियोंके भाग्य फूट गये! आप कहते हो कि भाग्यवान् हैं, तो किस बातमें भाग्यवान् हैं? चोरोंमें जो सरदार होता है वह साहूकार होता है क्या? वे बड़े हैं तो किस बातमें बड़े हैं? क्या नरकोंमें जानेके लिये, डूबनेके लिये बड़े हैं? वास्तवमें बड़ा तो वह है, जो अपना और दूसरोंका भी कल्याण कर दे। बड़ा वही है, जिसने साथ चलनेवाले धनका संग्रह कर लिया है। परंतु जिसका धन यहीं रह जाता है और खुद खाली हाथ चला जाता है, वह बड़ा कैसे हुआ?

दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति।
अदाता हि महात्यागी धनं हित्वा हि गच्छति॥

अर्थात् जो दान-पुण्य करता है, वह बड़ा कंजूस है; क्योंकि वह मरनेपर भी धनको छोड़ता नहीं, सब साथमें ले जाता है। परंतु जो दान-पुण्य नहीं करता, वह बड़ा त्यागी है; क्योंकि वह सब धन ज्यों-का-त्यों ही यहाँ छोड़कर चला जाता है, साथमें कुछ भी नहीं ले जाता। धनके लोभी ऐसे त्यागी हुआ करते हैं!

गुरुकी सेवा, धर्मका अनुष्ठान रुपयोंके अधीन है—ऐसी जिनकी धारणा है, वे मेरी बात समझ ही नहीं सकते। कारण कि वे रुपयोंमें ही एकदम रच-पच गये। मनमें, बुद्धिमें सब जगह रुपया-ही-रुपया है। वह क्या समझे बेचारा? ***'मायाको मजूर बंदो कहा जाने बंदगी।'***एक संतके पास कोई धनी आदमी आया और उसने एक दुशाला भेंट किया। सन्तने कहा—भाई, हमें जरूरत नहीं है, क्या करेंगे? तो उसने कहा कि महाराज, काम आ जायगा। संतने उससे

पूछा कि बात क्या है? किसलिये देते हो? तब उसने कहा—महाराज, आपको देनेसे हजार गुना पुण्य होगा, इसलिये देता हूँ। ऐसा सुनकर सन्तने कहा—मेरेपर एक हजारका कर्जा हुआ; अतः अभी एक तो तू ले ही जा, बाकी नौ सौ निन्यानबेका कर्जा मेरेपर रहा। ऐसा सुनकर वह आदमी चुपचाप दुशाला लेकर चला गया! एक ले लें और बदलेमें हजार देना पड़े—इतना कर्जा कौन उठाये? ये काँटा (तौल) काटनेवाले और ब्याज लेनेवाले भी इतना तो नहीं लेते! धनको ही ऊँचा दर्जा दे रखा है। धन देनेमें, दान-पुण्य करनेमें भी भाव लेनेका ही रहता है। अब ऐसे बेसमझको कौन समझाये? मनुष्यमात्रमें ताकत है कि अगर वह निष्पक्ष होकर सरल हृदयसे समझना चाहे तो बड़ी-बड़ी तात्त्विक बातोंको भी समझ सकता है। इतनी समझ मनुष्यको भगवान्‌ने दी है। परंतु मनुष्यने अपनी सब समझ रुपयोंमें लगा दी, और रुपयोंमें ही नहीं, रुपयोंकी संख्या बढ़ानेमें लगा दी। इतना ही नहीं, अपनी समझ पापोंमें, चालाकियोंमें लगा दी कि किस तरह इन्कमटैक्सकी चोरी करें, किस तरह सेल्सटैक्सकी चोरी करें, आनेवालोंको कैसे ठगें, आदि-आदि। जितनी बुद्धिमानी थी, वह सब-की-सब पाप बटोरनेमें लगा दी। अन्तःकरण महान् अशुद्ध हो जाय, आगे नरकोंमें जायँ, चौरासी लाख योनियोंमें दुःख भोगें—इसमें अपनी समझदारी लगा दी। लोग कहते हैं—वाह-वाह यह लखपति बन गया, करोड़पति बन गया। बड़ा होशियार, चलता पुर्जा है। यह पुर्जा चलता (जन्मता-मरता) ही रहेगा, बस। अब इसको विश्राम नहीं मिलेगा, कल्याण नहीं होगा। पर इस बातको समझे कौन?

मैं पूरबियो पूरब देस को, म्हारी बोली लखे नहिं कोय।
म्हारी बोली सो लखे, जो घर पूरबलो होय॥

मैं तो पूरब देशमें रहनेवाला हूँ। मेरी बोलीको यहाँ कोई नहीं समझता। मेरी बोली (भाषा) वही समझ सकता है, जो पूरब

देशका हो अनादि परमात्मतत्त्व 'पूरब' है। पूरब देशकी बोली यहाँ रहनेवाला कैसे समझे? जो रुपयोंके गुलाम हैं, वे पारमार्थिक बातें कैसे समझें? कहते हैं कि धर्मका अनुष्ठान पैसोंसे होगा, सत्संगका आयोजन पैसोंसे होगा, तो जिसको गर्ज हो, वह पैसा लगाये। गायका दूध चाहिये तो गायको चारा आदि दो। अगर दूध नहीं चाहिये तो गायको चारा आदि मत दो। ऐसे ही सत्संग सुनना हो तो उसके आयोजनमें पैसा लगाओ, नहीं सुनना हो तो कोई जरूरत नहीं। संतोंको क्या गर्ज है? पैसोंके बिना आपका काम नहीं चलता, पर संतोंका खूब अच्छी तरहसे चलता है।

सत्-शास्त्रोंके प्रचारमें, सद्भावोंके प्रचारमें रुपये लग जायँ तो संसारमें इसके समान पुण्यका कोई काम है ही नहीं। कारण कि इनके प्रचारसे लोगोंके भीतरका अँधेरा दूर हो जाता है, आध्यात्मिक लाभ हो जाता है। इसमें जिसका पैसा लग गया, वह बड़ा भाग्यशाली है। ऋषिकेश—स्वर्गाश्रमकी बात है। वैश्य जातिकी एक विधवा बहन थी। ससुरालवालोंने उसका धन दबा लिया था। वह वहाँ साधुओंको भिक्षा दिया करती। भिक्षा कैसे देती? अपने घरमें सिलाईका काम करके पैसे कमाती और उससे अन्न खरीदकर रोटी बनाती और भिक्षा देती। शरणानन्दजी महाराजने कहा कि जैसे सेठ एक ही (जयदयालजी गोयन्दका) हैं, ऐसे ही एक सेठानी भी यहाँ है। लखपति सेठानियाँ तो बहुत हैं, पर उनको सेठानीकी पदवी नहीं मिली। सेठानीकी पदवी मिली उस विधवा बहनको जो सिलाई कर-करके पैसा कमाती और भिक्षा देती। वह संतोंकी दृष्टिमें सेठानी हुई। क्या रुपयोंसे कोई सेठानी होती है? नहीं होती।

महाभारतमें एक कथा आती है। एक बड़े अच्छे ऋषि थे। एक बार उनके यहाँ राजरानियाँ आयीं। उन्होंने देखा कि ब्राह्मणीके शरीरपर साधारण कपड़े हैं और माँग (सुहागका चिह्न)-के सिवाय कोई गहना

नहीं है तो वे ब्राह्मणीसे बोलीं कि आप लोग तो हमारे राजाजीके गुरु हो, प्रजाके गुरु हो, पर आपके शरीरपर कोई गहना न देखकर हमें बहुत बुरा लगता है, हमें बड़ी शर्म आती है। ब्राह्मणीको उनकी बात जँच गयी; क्योंकि स्त्रियोंको गहनोंका बड़ा शौक होता है। उसने पतिदेवसे कहा कि मेरेको गहना चाहिये। ऋषिने कहा—ठीक है, ले आयेंगे गहना। जहाँतक बने, पतिको अपनी शक्तिके अनुसार स्त्रीकी न्याययुक्त इच्छाको पूरा करना चाहिये, यह उसका कर्तव्य है। ऋषि एक राजाके पास गये। राजाने पूछा कि महाराज, कैसे पधारे? ऋषिने कहा कि मुझे सोना चाहिये। राजाने खजानेके हिसाबकी बही लाकर सामने रख दी और कहा कि महाराज, आप हिसाब देख लो। ऋषिने देखा कि राजाकी आय और व्यय बराबर है, खजानेमें कुछ नहीं है। ऋषिने कहा कि ठीक है, मैं दूसरे राजाके पास जाता हूँ। राजाने कहा कि मैं भी आपके साथ चलूँगा। वे दोनों वहाँसे चल दिये और तीन-चार राजाओंके पास गये, पर सब जगह आय-व्यय बराबर मिला, खजानेमें कुछ नहीं मिला। फिर पूछनेपर पता लगा कि अमुक राक्षसके पास धन मिलेगा। वे उस राक्षसके पास गये। राक्षसने उनसे कहा कि महाराज, बहुत धन पड़ा है, चाहे जितना ले जाओ। तात्पर्य क्या हुआ? कि धन राजाओंके पास नहीं मिला, राक्षसके पास मिला! आपने पूछा है कि धनके बिना गुरु-सेवा कैसे हो? धार्मिक अनुष्ठान कैसे हो? इसलिये यह बात बतायी। आपकी जो शंका है, वह दूर हो जाय तो बड़ी अच्छी बात है। परंतु मेरेको बहम है कि वह शायद ही दूर हो; क्योंकि रुपया बड़ा प्रिय लगता है।

सत्संग आदिमें कोई पैसा खर्च कर दे तो उसकी बड़ी महिमा होती है। लोग कहते हैं कि अमुक आदमीने बड़ा भारी पुण्य किया। परंतु वास्तवमें वह बेचारा मारसे बच गया! पुण्य करनेका अर्थ टैक्स देना। धनी आदमी जो अच्छे काममें धन खर्च करते हैं, वह

उनका टैक्स है। टैक्स चुकानेकी महिमा नहीं होती। दस हजार रुपये टैक्स दे दिया तो यह नहीं कहते कि बड़ा दान कर दिया। टैक्स देकर तो वह मारसे बच गया, नहीं देता तो डंडा पड़ता। इसलिये दान-पुण्य करना कोई बड़ी बात नहीं है, यह तो जो धन रखते हैं, उसका टैक्स है। बड़ी बात तो यह है कि भगवान्‌के भजनमें लग जाओ, भगवान्‌की प्राप्ति कर लो। सगुण क्या है? निर्गुण क्या है? साकार क्या है? निराकार क्या है? बंधन क्या है? मुक्ति क्या है—इन बातोंको ठीक तरहसे समझ लो।

आपके पास धन है तो धनपर टैक्स लगेगा। आपके पास विद्या है तो विद्यापर टैक्स लगेगा। इनको दूसरोंकी सेवामें लगाओ। सरकार तो अपना टैक्स कान पकड़कर जबर्दस्ती ले लेगी। परंतु जहाँ धर्मकी बात है, आप प्रसन्न होकर दोगे तो ले लेगा, नहीं तो आपपर कर्जा रहेगा।

ब्रह्मचारी यतिश्चैव पक्वान्नं स्वामिनावुभौ।
तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥

एक तो ब्रह्मचारी और एक संन्यासी, जो त्यागी हैं, बनी बनायी रसोईके भागीदार हैं। भोजन बना हुआ हो तो इनको दे दो, बस। जो इनको अन्न न देकर खुद भोजन कर लेता है, वह एक महीनेका चान्द्रायण व्रत करे, तब उसकी शुद्धि होती है। इनको अन्न न देनेका इतना पाप लगता है। जो खेतमें काम नहीं आया, दूकानमें काम नहीं आया, घरके धंधेमें काम नहीं आया, उसको भोजन कराओ और न कराओ तो पाप लग जाय—यह कोई न्याय है? हमने कमाया, हमने बनाया, हमने सब काम किया और उसने किसी भी काममें रत्तीभर भी सहायता नहीं की, उसको भोजन न दें तो पाप लग जाय, कितना अन्याय है? इसका कारण क्या है? जैसे आप धन इकट्ठा करते हो, वैसे ही ब्रह्मचारी और साधु भी धन इकट्ठा कर सकता है। ब्रह्मचारी

और साधु पढ़े-लिखे भी होते हैं। कहीं घण्टाभर पढ़ा दें तो क्या उनको रोटी नहीं मिलेगी? आपमें जो योग्यता है, वह योग्यता क्या उनमें नहीं है? अगर वे धन इकट्ठा करेंगे तो वह धन आपके यहाँसे ही आयेगा, और कहाँसे आयेगा बताओ? उन्होंने धन इकट्ठा नहीं किया तो वह धन आपके पास ही रहा और कहाँ रहा? अतः जिसने थोड़ा भी धन नहीं लिया, सब धन आपके पास ही रहने दिया, उसको समयपर टुकड़ा तो दे दो! नहीं देते हो तो पाप लगेगा।

जो धनका संग्रह करता है, वह धन समुदायमेंसे ही आता है, उतनी कमी हो जाती है समुदायमें। पर जिसने धन लिया ही नहीं, वह धन किसके पास रहा, बताओ? समुदायके पास ही तो रहा। जितने जीव जन्म लेते हैं, उनका प्रारब्ध पहले बनता है, पीछे शरीर मिलता है। उसके जीवन-निर्वाहके लिये अन्न, जल आदिका प्रबन्ध पहलेसे किया रहता है। अतः उसका कहीं-न-कहीं अन्न है, कहीं-न-कहीं जल है, कहीं-न-कहीं वस्त्र है। वह जी रहा है तो उसका उन अन्न, जल, वस्त्र आदिपर हक है। आपके पास जो आवश्यकतासे अधिक अन्न, जल आदि है, उसपर उसका हक लगता है। अतः वह सामने आये तो उसका हक उसे दे दो।

शरणानन्दजी महाराज सूरदास थे। वे एक जगह गये, जहाँ कोई परिचित आदमी नहीं था। वहाँसे उनको आगे स्टेशनतक जाना था, जिसका चार आना टिकट लगता था। वे एक आदमीसे बोले कि भाई! टिकट लाकर दो। वह बोला—बाबा, माफ करो। महाराजजी बोले—माफ कैसे करें तुमको? माफ नहीं कर सकते। माफ तो तब करें जब मैं पात्र न होऊँ और तुम्हारे पास पैसा न हो। मैं पात्र हूँ और तुम्हारे पास पैसा है, फिर माफ कैसे कर दें? उस आदमीको टिकट लाकर देना पड़ा। अपराधीको माफ नहीं किया जाता। अपराध क्या है? जैसे तुम पैसे रखते हो वैसे मैं भी पैसे रख सकता था। पर मैंने पैसे रखे

ही नहीं, तो वे पैसे कहाँ गये? तुम्हारे पास ही रहे। तुम खजानची हो। जब हमें जरूरत हो, तब दे दिया करो। जिसको मिलता है, उसको अपने भाग्यका मिलता है। क्या आप अपने भाग्यका देते हो? क्या आप रोटी नहीं खाते? कपड़ा नहीं पहनते? मकानमें नहीं रहते? आप तो पूरा खाते हो, पहनते हो; परंतु जो जमा करते हो, उसपर हमारा हक है। साहूकारीसे दे दो तो अच्छी बात है, नहीं तो दण्ड होगा। माफी कैसे होगी?

जो रात-दिन रुपयोंके लोभमें लगे हैं, वे इन बातोंको समझ ही नहीं सकते। जिस बाजारमें वे गये ही नहीं, उस बाजारके भावोंको वे कैसे समझेंगे? वे जिस बाजारमें रहते हैं, उसी बाजारके भावोंको वे समझ सकते हैं। वे रुपयोंके बाजारमें ही रहते हैं। त्यागका भी एक विलक्षण, अलौकिक बाजार है, पर उसकी बात वही समझ सकता है, जो उसी बाजारका हो।

एक अच्छे महात्मा थे। उनसे मैंने अलग-अलग समयपर दो प्रश्न किये। एक समय तो उनसे यह प्रश्न किया कि आप इतने ऊँचे दर्जेकी बातें सुनाते हो, पर क्या आप यह जानते हो कि हमलोग उन बातोंको ठीक समझते हैं? अगर हमलोग उन बातोंको न समझते हों, तो उन बातोंका मूल्य क्या हुआ? उन्होंने उत्तर दिया कि मेरी बातें आकाशमें रहेंगी; जब कोई समझदार होगा, पात्र होगा, उसके सामने वे प्रकट हो जायँगी। दूसरी बार मैंने कहा कि भगवान्‌के घरमें पोल है, न्याय नहीं है। उन्होंने पूछा—कैसे? तो मैंने कहा कि आप-जैसे महात्माओंको हमारे सामने ले आये। हमलोग कोई पात्र थे क्या? भूखेको अन्न देना चाहिये, प्यासेको जल देना चाहिये, ऐसे ही जो योग्य हों, उनको ऊँचे दर्जेकी बातें सुनानी चाहिये। आप-जैसे तो सुनानेवाले मिले और हमारे-जैसे पात्र मिले, इससे मालूम होता है कि भगवान्‌के घर बड़ी पोल है—

अंधाधुंध सरकार है, तुलसी भजो निसंक।
खीजै दीनो परमपद, रीझै दीनी लंक॥

ऐसा मैंने कहा तो वे महात्मा बोले—बेटी कौन-सी कुँआरी रहती है? अच्छा वर मिल जाय तो ठीक है, नहीं तो कैसा भी वर मिले, विवाह करना ही पड़ता है। इस तरह पात्र न होनेपर भी भगवान्‌की कृपासे ऊँचे दर्जेकी बातें मिल जाती हैं।

बीकानेरकी बात है। एक जगह सत्संग हो रहा था। गाड़ीसे उतरते ही लोग मुझे सीधे वहाँ ले गये और कहा कि कुछ सुनाओ। मैंने कहा—मेरे मनमें तो ऐसी आयी है कि मेरे-जैसोंको तो यहाँसे कान पकड़कर निकाल देना चाहिये कि यहाँ सत्संग हो रहा है, तुम कैसे आ गये बीचमें। भगवान्‌के यहाँ पोल चलती है, इसलिये सत्संगकी बातें कहते और सुनते हैं, नहीं तो इतने ऊँचे दर्जेकी बातें हम सुननेके लायक नहीं हैं। फिर भी भगवान् लाज रखते हैं कि कोई बात नहीं, बच्चा है बेचारा। ऊँचे दर्जेकी बातें उनके सामने ही कहनी चाहिये, जो अधिकारी हैं। संतोंने कहा है—

हरि हीरा की गाँठड़ी, गाहक बिनु मत खोल।
आसी हीरा पारखी, बिकसी मँहगे मोल॥

परंतु भगवान्‌की इतनी कृपा है कि हमारे-जैसे अयोग्यको भी इतनी विचित्र-विचित्र बातें मिलती हैं। भगवान् अधिकारी नहीं देखते, योग्यता नहीं देखते। वर्षा होती है तो जंगलपर भी पानी बरसता है और समुद्रपर भी। समुद्रमें पानीकी कमी है क्या? पर फिर भी बरसता है। ऐसे ही जो संत-महात्मा होते हैं वे भी कृपा करके बरस पड़ते हैं, कोई ग्रहण करे, चाहे न करे। इसी तरह भगवान् भी कृपा करते हैं, तो पात्र-कुपात्र नहीं देखते। कुपात्रको भी भगवान् कृपा करके ऐसा बढ़िया (सत्संगका) मौका देते हैं; अगर ऐसा बढ़िया मौका सुपात्रको मिल जाय तो फिर कहना ही क्या है! मैंने तो एक सज्जनसे कहा था कि

आपकी बुद्धि अच्छी है, अगर आप इधर लग जाओ तो बहुत लाभ उठा सकते हो। पर उन्होंने मेरी बात मानी नहीं। मेरे मनमें आयी कि ऐसी अच्छी बुद्धि है, अच्छे काममें लग जाय तो कितनी बढ़िया बात है! परंतु उनको जँचती नहीं तो हम क्या करें?

आप लोगोंने धन कमानेमें खूब बुद्धि लगायी है। बेईमानी करनेमें, झूठ-कपट, ठगी-जालसाजी करनेमें, टैक्सोंसे बचनेमें बुद्धि लगानी पड़ती है। बिना बुद्धि लगाये ये काम नहीं होते। ज्यों-ज्यों नया कानून बनता है, त्यों-त्यों आपकी बुद्धि और तेज होती है। खुदसे काम न होता हो तो वकीलसे पूछते हैं; क्योंकि वह आपका अक्लदाता है, गुरुजी महाराज है। वह आपको बताता है कि ऐसा करो, इस तरहसे करो। उस गुरुजीसे शिक्षा ले-लेकर आप रात-दिन अध्ययन करनेमें लगे हैं; फिर मेरे-जैसे भिक्षुककी बात कौन माने? आपको वहम है कि इनकी बात मानेंगे तो हम भी इन्हींकी तरह हो जायँगे।

त्याग क्या है? भजन-स्मरण क्या है? भगवत्सम्बन्धी बात क्या है? धर्म क्या है? इसको दूसरा कोई क्या जाने, जाननेवाला ही जानता है। पैसेवाले समझते हैं कि यह पैसोंके अधीन है। परंतु यह पैसोंके अधीन नहीं है, बाहरी चीजोंके अधीन नहीं है। यह तो भावके अधीन है—**'भावग्राही जनार्दनः'** भगवान् भावग्राही हैं। जिसका भाव होगा, उसकी आध्यात्मिक उन्नति होगी। कलकत्तेकी बात है। एक धनी आदमी श्रीजयदयालजी गोयन्दकासे मिलने आया। बात चलनेपर उसने कहा कि धनसे सब कुछ मिलता है। गोयन्दकाजीने कहा कि धनसे सब कुछ मिलता है, पर महात्मा नहीं मिलते। उसने कहा धनसे तो कई महात्मा आ जायँ। गोयन्दकाजी बोले कि जो धनसे मिलते हैं, वे महात्मा नहीं होते और जो महात्मा होते हैं, वे धनसे नहीं मिलते। धनसे धनका गुलाम मिलता है। जैसे, हमें सौ रुपयोंमें घड़ी मिलती है, तो क्या दुकानदारके सौ रुपये लगे हैं?

अगर उसके सौ रुपये लगे हैं, तो फिर वह बेचे ही क्यों? अतः जो चीज पैसोंसे मिलती है, वह पैसोंसे कम कीमती होती है। पैसोंके बदले जो कोई मिलेगा, वह पैसोंका गुलाम ही होगा। सत्संग पैसोंसे नहीं होता। यह तो भगवान्‌की कृपासे ही होता है— ***'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥'***(मानस ५।७।२)। कृपा करते समय भगवान् यह नहीं देखते कि इसने कितना पुण्य किया है? इसमें कितनी योग्यता है? इसका कितना अधिकार है?

सतगुरु पूठा इंद्रसम, कमी न राखी कोय।
वैसा ही फल नीपजै, जैसी भूमी होय॥

वर्षा तो बरस जाती है, पर आगे भूमिमें जैसा बीज होगा वैसा ही फल होगा। मारवाड़के लोग समझते हैं, एक मतीरा होता है और एक बिस्लुंबा (तस्तुंबा) होता है। दोनोंकी बेल बराबर ही दीखती है और फल भी आरम्भमें समान दीखता है। परंतु मतीरा तो मीठा होता है और बिस्लुंबा बड़ा कड़ुआ होता है। वर्षा भी एक, जमीन भी एक, हवा भी एक, धूप भी एक, खाद भी एक, फिर यह फर्क क्यों है? फर्क बीजमें है जैसा बीज होगा, उसीके अनुसार फल होगा। वह बीज बदला नहीं जा सकता। ऐसे ही चौरासी लाख योनियाँ बदली नहीं जा सकतीं, पर मनुष्य बदल सकता है। मनुष्य अपनेको बहुत बड़ा संत-महात्मा, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त बना सकता है— इतनी योग्यता भगवान्‌ने दी है। परंतु मनुष्यने वह योग्यता पैसोंमें लगा दी है! तेलीके घर जो तेल होता है, वह पैर धोनेके लिये थोड़े-ही होता है? लाखों रुपयोंकी एक मणि लाकर दी, तो बोरीमेंसे एक धागा निकाल लिया और मणिको उसमें पिरोकर पैरोंमें बाँध लिया। बाँधनेवालेकी बुद्धि तो देखो! राजाके मुकुटपर लगनेवाली मणि क्या पैरोंमें बाँधनेके लिये है? ऐसे ही मनुष्य-जीवन-जैसी बढ़िया चीजको तुच्छ भोगोंमें और रुपयोंके संग्रहमें लगा दिया! मनुष्यजन्म

खराब क्यों किया भाई? तुम्हारी जगह कोई दूसरा जीव आता तो अपना कल्याण करता बेचारा। परंतु तुमने आकर यह सीट रोक ली। गीता कहती है कि ऐसा आदमी निरर्थक ही जीता है— '**मोघं पार्थ स जीवति॥**' (३। १६)। अर्थात् वह मर जाय तो अच्छा है! कारण कि मनुष्य-शरीर पाकर कल्याण नहीं करता, रात-दिन पशुओंकी तरह भोग भोगनेमें लगा हुआ है। पशुओंके भी बाल-बच्चे होते हैं तो वे राजी होते हैं। एक सूअरीके पाँच-सात, दस-ग्यारह बच्चे होते देखे हैं। इतने बच्चे उसके साथ घूमते हैं, तो वह राजी होती है। ऐसे ही आप भी बाल-बच्चोंमें राजी होते हैं। यह मनुष्य-जीवन इसीलिये मिला है क्या? बच्चोंका पालन-पोषण करो, उनको शिक्षा दो, पर उनमें मोह मत करो। अगर वे आपका कहना नहीं मानते तो उनका भाग्य फूट गया, पर आपका तो काम बन गया! एक कुम्हार था। एक दिन वह अपने घर गया और उसने अपनी स्त्रीसे पूछा कि रसोई बनायी या नहीं? स्त्रीने कहा कि रसोई तो नहीं बनी। घरमें अन्नका दाना भी नहीं है, किसकी रसोई बनायें? वह कुम्हार एक हाँड़ी लेकर बाजार गया और एक दुकानदारसे कहा कि यह हाँड़ी ले लो और बदलेमें थोड़ा बाजरा दे दो। दूकानदारने हाँड़ी लेकर बदलेमें बाजरा दे दिया। कुम्हार बाजरा लेकर घरपर आया। फिर उन्होंने रसोई बनाकर भोजन कर लिया। दूसरे दिन वह दूकानदार कुम्हारसे मिला तो उसने कहा— अरे! यह कैसी हाँड़ी दी तुमने? हाँड़ी तो फूटी हुई थी, चूल्हेपर रखी तो आग बुझ गयी। तुम्हारी हाँड़ी चढ़ी ही नहीं! तब वह कुम्हार बोला कि तुम्हारी हाँड़ी तो नहीं चढ़ी, पर हमारी हाँड़ी तो चढ़ गयी (हमारी रसोई तो बन गयी)। ऐसे ही जो अपना काम कर ले उसकी हाँड़ी तो चढ़ ही गयी। आप बालकोंका ठीक तरहसे पालन-पोषण करें, उनको अच्छी शिक्षा दें तो आपकी हाँड़ी चढ़ गयी।

सज्जनो! अपना उद्धार कर लो, अभी मौका है। भगवान्‌ने बड़ी कृपा करके यह मानव-शरीर दिया है। यह मानव-शरीर भगवान्‌का भजन करनेके योग्य है, इसलिये इसको निरर्थक नष्ट मत होने दो। इस संसारमें अपना कोई भी नहीं है, अपने तो एक परमात्मा ही हैं। यह जो आपके पास धन है, शरीर है, योग्यता है, यह संसारकी सेवाके लिये है। शरीर भी आपका नहीं है, मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ भी आपकी नहीं हैं, कुटुम्ब भी आपका नहीं है, रुपये-पैसे भी आपके नहीं हैं। ये तो दूसरोंकी सेवा करनेके लिये हैं। अपने लिये तो केवल परमात्मा ही हैं। इससे भी बढ़िया बात है कि आप परमात्माके लिये हो जाओ। परमात्मासे अपने लिये कुछ भी मत चाहो। जो परमात्मासे कुछ भी नहीं चाहता, उसकी गरज परमात्मा करते हैं!

एक बाबाजी थे। एक दिन वे एक ऊँची टोपी पहनकर बड़ी मस्तीसे भजन कर रहे थे। भगवान् विनोदी ठहरे, वे बाबाजीके पास आये और बोले—वाह-वाह, आज तो बड़ी ऊँची टोपी लगाकर बैठे हो! बाबाजी बोले—किसीसे माँगकर थोड़े ही लाया हूँ, अपनी है। भगवान्‌ने कहा—मिजाज करते हो? बाबाजी बोले—उधार लाये हैं क्या मिजाज? भगवान् बोले—तुम मेरेको जानते हो कि नहीं? बाबाजी बोले—अच्छी तरहसे जानता हूँ। भगवान्‌ने कहा—मैं सबसे कह दूँगा कि यह अभिमानी है, भक्त नहीं है, तब क्या दशा होगी? दुनिया भक्त मानकर ही तो तुम्हारी सेवा करती है और तुम मिजाज करते हो? बाबाजी बोले—तुम कह दोगे तो मैं भी कह दूँगा कि मैंने भजन करके देखा है, भगवान् कुछ भी नहीं हैं। तुम्हारी प्रसिद्धि तो हमने ही कर रखी है, नहीं तो कौन पूछता तुम्हें? भगवान् बोले—ऐसा मत कहना। बाबाजीने कहा—तो आप भी मत कहना, हम भी नहीं कहेंगे। इस प्रकार भक्त भगवान्‌की भी गरज नहीं करते। ऐसे भक्तोंके लिये

भगवान् कहते हैं—*'मैं तो हूँ भगतनको दास, भगत मेरे मुकुटमणि।'* भक्तोंमें ऐसा नहीं है कि साधु ही भक्त होते हैं, बहनें भी भक्त होती हैं।

मीराँ जाई मेड़ते परणाई चितोड़।
राम भगतिके कारणे सकल सृष्टि को मोड़।
राम दड़ी चौड़ै पड़ी, सब कोई खेलो आय।
दावा नहीं संतदास, जीते सो ले जाय॥
जाट भजो गूजर भजो, भावे भजो अहीर।
तुलसी रघुबर नाम में, सब काहू का सीर॥

कोई भी क्यों न हो, वह भगवान्‌का अंश है। भगवान्‌का अंश होनेसे प्रत्येक जीवका भगवान्‌पर हक लगता है; जैसे बालकका अपनी माँ पर हक लगता है। भगवान् हमें कपूत या सपूत कह सकते हैं, पर 'पूत नहीं है' अर्थात् मेरा नहीं है—ऐसा नहीं कह सकते। हम चाहे कपूत हैं, चाहे सपूत, पर पूत तो हैं ही, हैं तो हम भगवान्‌के ही। अब कपूताई दूर कर दो तो काम बन गया, बस। इतनी-सी बात है, कोई लंबी-चौड़ी बात नहीं।

आप कहते हैं कि धनके बिना धार्मिक आयोजन कैसे होगा? वास्तवमें उस धनको ही धार्मिक आयोजनोंकी गरज है, धार्मिक आयोजनोंको उस धनकी गरज नहीं है। जो धनकी गरज मानते हैं, वे धनके दास हैं, धर्मके दास नहीं। धर्मके लिये तो सही पैसोंकी भी जरूरत नहीं है, फिर पापसे कमाये हुए पैसोंकी क्या जरूरत है? हमारे घरमें पानीका नल लगा है तो इसका मतलब यह नहीं कि हम धोये हुए कपड़ोंको कीचड़से मैला कर लें और फिर उनको नलसे धोयें। ऐसे ही झूठ, कपट, बेईमानी करके कमाये हुए पैसोंसे धर्म करते हो, तो फिर पहले पाप ही क्यों करते हो? कपड़ेमें एक छटाँक कीचड़ लग जाय तो वह एक छटाँक जलसे साफ नहीं होता। सेरोंभर जल

लगनेपर भी बाहरसे भले ही धुल जाय, पर भीतरसे गंदापन बाकी रह ही जाता है। इसलिये धर्मके लिये भी जो पाप करता है कि पाप करके पैसा कमायें और फिर उसे अच्छे काममें लगा दें, तो उसका पैसा अच्छे काममें लगेगा ही नहीं और लगेगा तो भी वह पापसे शुद्ध होगा नहीं। सब-का-सब पैसा लगा दें, तो भी वह पाप दूर नहीं होगा। अगर धर्म करनेकी आपकी इच्छा होती तो पहले पाप करते ही नहीं। अगर पाप करते हो, तो केवल लोगोंको दिखानेके लिये धर्म करते हो। धर्मकी भावना भीतर है ही नहीं। असली धर्मका तत्त्व जाननेवाला धर्मके लिये पाप कर ही नहीं सकता।

एक बड़े सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मण थे। उनके घरमें प्रायः रोटी-कपड़ेकी तंगी रहती थी। साधारण निर्वाहमात्र होता था। वहाँके राजा बड़े धर्मात्मा थे। ब्राह्मणीने अपने पतिसे कई बार कहा कि आप एक बार तो राजासे मिल आओ, पर ब्राह्मण कहते कि वहाँ जानेके लिये मेरा मन नहीं करता। ब्राह्मणीने कहा कि मैं आपसे माँगनेके लिये नहीं कहती। वहाँ जाकर आप माँगो कुछ नहीं, केवल एक बार जाकर आ जाओ। ज्यादा कहा तो स्त्रीकी प्रसन्नताके लिये वे राजाके पास चले गये। राजाने उनको बड़े त्यागसे रहनेवाले गृहस्थ ब्राह्मण जानकर उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उनसे कहा कि आप एक दिन और पधारें। अभी तो आप अपनी मर्जीसे आये हैं, एक दिन आप मेरेपर कृपा करके मेरी मर्जीसे पधारें। ऐसा कहकर राजाने उनकी पूजा करके आनन्दपूर्वक उनको विदा कर दिया। घर आनेपर ब्राह्मणीने पूछा कि राजाने क्या दिया? ब्राह्मण बोले—दिया क्या, उन्होंने कहा कि एक दिन आप फिर आओ। ब्राह्मणीने सोचा कि अब माल मिलेगा। राजाने निमन्त्रण दिया है, इसलिये अब जरूर कुछ देंगे।

एक दिन राजा रात्रिमें अपना वेश बदलकर, बहुत गरीब आदमीके कपड़े पहनकर घूमने लगे। ठण्डीके दिन थे। एक लुहारके यहाँ एक

कड़ाह बन रहा था। उसमें घन मारनेवाले आदमीकी जरूरत थी। राजा इस कामके लिये तैयार हो गये। लुहारने कहा कि एक घंटा काम करनेके दो पैसे दिये जायँगे। राजाने बड़े उत्साहसे, बड़ी तत्परतासे दो घंटे काम किया। राजाके हाथोंमें छाले पड़ गये, पसीना आ गया, बड़ी मेहनत पड़ी। लुहारने चार पैसे दे दिये। राजा उन चार पैसोंको लेकर आ गया और आकर हाथोंपर पट्टी बाँधी। धीरे-धीरे हाथोंमें पड़े छाले ठीक हो गये।

एक दिन ब्राह्मणीके कहनेपर वे ब्राह्मण-देवता राजाके यहाँ फिर पधारे। राजाने उनका बड़ा आदर किया, आसन दिया, पूजन किया और उनको वे चार पैसे भेंट दे दिये। ब्राह्मण बड़े संतोषी थे। वे उन चार पैसोंको लेकर घर पहुँचे। ब्राह्मणी सोच रही थी कि आज खूब माल मिलेगा। जब उसने चार पैसोंको देखा तो कहा कि राजाने क्या तो दिया और क्या आपने लिया! आप-जैसे पण्डित ब्राह्मण और देनेवाला राजा! ब्राह्मणीने चार पैसे फेंक दिये। जब सुबह उठकर देखा तो वहाँ चार जगह सोनेकी सीकें दिखायी दीं। सच्चा धन उग जाता है। सोनेकी उन सीकोंको वे रोजाना काटते पर दूसरे दिन वे पुनः उग आतीं। उनको खोदकर देखा तो मूलमें वे ही चार पैसे मिले!

राजाने ब्राह्मणको अन्न नहीं दिया; क्योंकि राजाका अन्न शुद्ध नहीं होता, खराब पैसोंका होता है। मदिरा आदिपर लगे टैक्सके पैसे होते हैं, चोरोंको दण्ड देनेसे प्राप्त हुए पैसे होते हैं—ऐसे पैसोंको देकर ब्राह्मणको भ्रष्ट नहीं करना है। इसलिये राजाने अपनी खरी कमाईके पैसे दिये। आप भी धार्मिक अनुष्ठान आदिमें अपनी खरी कमाईका धन खर्च करो।

❂❂❂